दिव्य शक्तियों का
उद्भव प्राणशक्ति से
श्रीराम शर्मा आचार्य

दिव्य शक्तियों का उद्भव प्राणशक्ति से

लेखक :

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : २४.०० रुपये

विषय-सूची

इस संसार में दिखाई पड़ने वाली और न दीखने वाली जितनी भी वस्तुएँ तथा शक्तियाँ हैं, उन सबके संपूर्ण योग का नाम 'प्राण' है। इस विश्व की अति सूक्ष्म और अति उत्कृष्ट सत्ता को प्राण ऊर्जा (Vital Energy) कह सकते हैं। श्वास-प्रश्वास क्रिया तो उसकी वाहन मात्र है, जिस पर सवार होकर वह हमारे समस्त अवयवों और क्रिया-कलापों तक आती-जाती और उन्हें समर्थ, व्यवस्थित एवं नियंत्रित बनाये रहती है। भौतिक जगत् में संव्याप्त गर्मी-रोशनी, बिजली, चुंबक आदि को उसी के प्रति-स्फुरण समझा जा सकता है। वह बाह्य और अंतर्मन से संबोधित होकर इच्छा के रूप में, इच्छा से भावना के रूप में, भावना से आत्मा के रूप में परिणत होती हुई अंततः परमात्मा से जा मिलने वाली इस विश्व की सर्व समर्थ सत्ता है। इस प्रकार से उसे परमात्मा का कर्तव्य माध्यम या उपकरण ही माना जाना चाहिए।

अतींद्रिय सामर्थ्यों का मूल स्रोत—प्राणमय कोश

मलाया के राजा 'परमेसुरी अगोंग' की पुत्री राजकुमारी शरीफा साल्वा के विवाह की तैयारियाँ बहुत धूम-धाम से की गईं। उत्सव बहुत शानदार मनाया जाना था, किंतु विवाह के दिन घनघोर वर्षा आरंभ हो गयी और सर्वत्र पानी-ही-पानी भरा नजर आने लगा। अब उत्सव का क्या हो ? अंततः एक तांत्रिक महिला राजकीय सम्मान के साथ बुलाई गयी और उससे वर्षा रोकने के लिए कुछ उपाय, उपचार करने के लिए कहा गया। फलतः एक आश्चर्यचकित करने वाला प्रतिफल यह देखा गया कि पानी तो उस क्षेत्र में बरसता रहा, पर समारोह के लिए जितनी जगह नियत थी, उस पर एक बूँद भी पानी नहीं गिरा और उत्सव अपने निर्धारित क्रम के अनुसार ठीक तरह संपन्न हो गया। ठीक ऐसी ही एक और भी घटना उस देश में सन् १९६४ में हुई थी। उन दिनों राष्ट्रमंडलीय क्रिकेट दल खेलने आया था और उसे देखने के लिए भारी भीड़ उपस्थित थी। दुर्भाग्य से नियत समय पर भारी वर्षा आरंभ हो गयी। कुआलालंपुर नगर पर घनघोर घटाएँ बरस रही थीं। अब खेल का क्या हो ? मैदान पानी से भर जाने पर तो सूखना बहुत दिनों तक संभव नहीं हो सकता था। इस विपत्ति से बचने के लिए वहाँ के तांत्रिकों की सहायता लेना उचित समझा गया। अस्तु, मलाया क्रिकेट ऐसोसियेशन के अध्यक्ष ने आग्रहपूर्वक रेंबाऊ के जाने-माने तांत्रिक को बुलाया। उसका प्रयोग भी चकित करने वाला रहा। क्रिकेट के मैदान पर एक

अदृश्य छतरी तन गयी और वहाँ एक बूँद भी न गिरी, जबकि चारों ओर भयंकर वर्षा के दृश्य दिखाई देते रहे।

एक और तीसरी घटना भी अंतर्राष्ट्रीय चर्चा का विषय बनी रही है। 'दि ईयर ऑफ दि ड्रेगन' फिल्म की शूटिंग वहाँ चल रही थी। जिस दिन प्रधान शूटिंग होना थी, उसी दिन वर्षा उमड़ पड़ी। इस अवसर पर भी अब्दुल बिन उमर नामक एक तांत्रिक की सहायता ली गयी और शूटिंग क्षेत्र पूरे समय वर्षा से बचा रहा।

'द रॉयल एस्ट्रोनॉमिकल सोसाइटी' के तत्कालीन अध्यक्ष तथा अन्य प्रमुख लोगों ने श्री डेनियल डगलस होम की विलक्षण कलाबाजियों का आँखों देखा विवरण लिखा है। प्रख्यात वैज्ञानिक, रेडियो मीटर के निर्माता, थीलियम गोलियम के अन्वेषक सर विलियम क्रुक्स ने भी श्री डेनियल डगलस होम का बारीकी से अध्ययन कर, उन्हें चालाकी से रहित पाया था।

इन करिश्मों में हवा में ऊँचे उठ जाना, हवा में चलना और तैरना, जलते हुए अंगारे हाथ में रखना आदि हैं। सर विलियम क्रुक्स अपने समय के शीर्षस्थ रसायनशास्त्री थे। उन्होंने भली-भाँति निरीक्षण कर श्री डी० डी० होम की हथेलियों की जाँच की, उनमें कुछ भी लगा नहीं था। हाथ मुलायम और नाजुक थे। फिर श्री क्रुक्स के देखते-देखते श्री डी० डी० होम ने धधकती अँगीठी से सर्वाधिक लाल चमकदार कोयला उठाकर, अपनी हथेली में रखा और रखे रहे। उनके हाथ में छाले, फफोले कुछ भी नहीं पड़े।

'रिपोर्ट ऑफ द डायलेक्टिकल सोसाइटी एंड कमेटी ऑफ स्पिरिचुअलिज्म' में लार्ड अडारे ने भी श्री होम का विवरण दिया है। आपने बताया कि एक 'सियान्स' में वे आठ व्यक्तियों के साथ उपस्थित थे। श्री डी० डी० होम ने दहकते अँगारे न केवल अपनी हथेलियों पर रखे, बल्कि उन्हें अन्य व्यक्तियों के भी हाथों में रखाया। सात ने तो तनिक भी जलन या तकलीफ के बिना, उन्हें

अपने हाथ में रखा। इनमें से चार महिलायें थीं। दो अन्य व्यक्ति उसे सहन नहीं कर सके। लार्ड अडारे ने ऐसे अन्य अनेक अनुभव भी लिखे हैं, जो श्री होम की अति मानसिक क्षमताओं तथा अदृश्य शक्तियों से उनके संबंध पर प्रकाश डालते हैं। इनमें अनेक व्यक्तियों की उपस्थिति में कमरे की सभी वस्तुओं का होम की इच्छा मात्र से थरथराने लगना, किसी एक पदार्थ (जैसे टेबिल या कुर्सी आदि) का हवा में ४-६ फीट ऊपर उठ जाना और होम के इच्छित समय तक वहाँ उनका लटके रहना, टेबिल के उलटने-पलटने के बाद भी उस पर सामान्य रीति से रखा संगमरमर का पत्थर और कागज, पेंसिल का यथावत् बने रहना आदि हैं।

सर विलियम क्रुक्स ने भी एक सुंदर हाथ के सहसा प्रकट होने, होम के बटन में लगे फूल की पत्ती को उस हाथ द्वारा तोड़े जाने, किसी वस्तु के हिलने, उसके इर्द-गिर्द चमकीले बादल बनने और फिर उस बादल को स्पष्ट हाथ में परिवर्तित होने तथा उस हाथ को स्पर्श करने पर कभी बेहद सर्द, कभी उष्ण और शीतल लगने आदि के विवरण लिखे हैं।

अमेरिका के एक मनोविज्ञानशास्त्री डॉ० रॉल्फ एलेक्जेंडर ने पराशक्ति जाग्रत् करके, बादलों को इच्छानुसार हटाने और पैदा कर देने का प्रयोग किया है। वे बहुत वर्षों से मन को एकाग्र कर उसकी शक्ति से बादलों को प्रभावित करने का प्रयोग कर रहे थे। १९५१ में उन्होंने मेक्सिको सिटी में १२ मिनट के भीतर आकाश में कुछ बरसाती बादल जमा कर दिए। उस अवसर पर कई स्थानों के वैज्ञानिक और अन्य विद्वान् वहाँ इकट्ठे थे। डॉ० एलेक्जेंडर की शक्ति के संबंध में उनमें मतभेद बना रहा, तो भी सबने यह स्वीकार किया कि जब आकाश में एक भी बादल न था, तब दस-बारह मिनट में बादल पैदा हो जाना और थोड़ी बूँदा-बाँदी भी हो जाना आश्चर्य की बात अवश्य है।

इसलिए डॉ० एलेक्जेंडर ने फिर ऐसा प्रयोग करने का निश्चय किया, जिसमें किसी प्रकार का संदेह न रहे। उन्होंने कहा कि—'वे आकाश में मौजूद बादलों में से जिसको दर्शक कहेंगे, उसी को अपनी इच्छा-शक्ति से हटाकर दिखा देंगे।' इसके लिए ओंटेरियो ओरीलियो नामक स्थान में १२ सितंबर, १६५४ को एक प्रदर्शन किया गया। उसमें लगभग ५० वैज्ञानिक, पत्रकार तथा नगर के बड़े अधिकारी इस चमत्कार को देखने के लिए इकट्‌ठे हुए। नगर का मेयर (नगरपालिकाध्यक्ष) भी विशेष रूप से बुलाया गया, जिससे इस प्रयोग की सफलता में किसी को संदेह न हो। यह भी व्यवस्था की गयी कि, जब बादलों को गायब किया जाय, तो कई बहुत तेज कैमरे उनका चित्र उतारते रहें। इसकी आवश्यकता इसलिए पड़ी कि कुछ लोगों का ख्याल था कि डॉ० एलेक्जेंडर दर्शकों पर 'सामूहिक हिप्नोटिज्म' का प्रयोग करके, ऐसा दृश्य दिखा देते हैं, वास्तव में बादल हटता नहीं। इससे मनुष्य का मन भ्रम में पड़ सकता है, पर तब ओटोमेटिक कैमरा उस दृश्य का चित्र उतार लेगा, तो संदेह की गुंजायश ही नहीं रहेगी। कैमरे के चित्र में तो वही बात आयेगी, जो उसके सामने होगी। आगे की घटना के विषय में एक स्थानीय समाचार पत्र 'दी डेली पैकेट एंड टाइम्स' ने जो विवरण प्रकाशित किया, वह इस प्रकार है—

'जब सब लोग इकट्‌ठे हो गए, तो डॉ० एलेक्जेंडर ने उनसे कहा कि वे स्वयं एक बादल चुन लें, जिसको गायब कराना चाहते हों। क्षितिज के पास बहुत-से बादल थे। उनके बीच-बीच में आसमान भी झलक रहा था। उनमें बादलों की एक पतली-सी पट्‌टी काफी घनी और अपनी जगह पर स्थिर थी। उसी को प्रयोग का लक्ष्य बनाया गया। कैमरे ने उसकी कई तस्वीरें उतार लीं।'

'डॉ० एलेक्जेंडर ने थोड़ी देर प्राणायाम किया, भौंहें सिकोड़ी (त्राटक की क्रिया की) और टकटकी लगाकर बादलों की उसी पट्टी की ओर देखने लगे। अकस्मात् उन बादलों में एक विचित्र परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। बादलों की वह पट्टी चौड़ी होने लगी और फिर धीरे-धीरे पतली होने लगी। कैमरे चालू थे और हर सेकंड में एक तस्वीर उतारे जा रहे थे। मिनट पर मिनट बीतते गये, पट्टी और पतली पड़ने लगी, उनका घनत्व भी कम होने लगा। धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा, मानो कोई रुई को धुन-धुन कर अलग कर रहा है। आठ मिनट के भीतर सब लोगों ने देखा कि वह पट्टी आसमान से बिल्कुल गायब हो गयी है, जबकि आस-पास के बादल जहाँ के तहाँ स्थिर रहे।'

'लोगों की आँखें आश्चर्य से फटी जा रही थीं, पर डॉ० एलेक्जेंडर स्वयं अभी संतुष्ट नहीं थे। हो सकता है, कुछ लोग यह समझें कि यह सिर्फ दैवयोग की बात है। बादल तो बनते-बिगड़ते ही रहते हैं। उन्होंने लोगों से फिर किसी दूसरे बादल का चुनाव करने को कहा और फिर कैमरे उस नये बादल पर केंद्रित कर दिये गये। उस दिन तीन बार यही प्रयोग हुआ और तीनों बार डॉक्टर एलेक्जेंडर ने सफलतापूर्वक बादलों को गायब कर दिया। जब कैमरे की फिल्में साफ की गईं और फोटो निकाले गये तो देखा कि हर बार बादलों का गायब होना, उनमें पूरी तरह उतर आया है, तब वहाँ के प्रमुख अखबार ने इस समाचार को 'क्लाउड डिस्ट्रायड बाई डॉक्टर' (बादल—डॉक्टर द्वारा नष्ट किए गये) का बहुत बड़ा हैडिंग देकर प्रकाशित किया।

अमेरिका में इस विद्या को 'साइकोकाइनेसिस' अथवा पी० के० कहते हैं और इसका अभ्यास करने वालों का दावा है कि कुछ समय पश्चात् वे इसके द्वारा बादलों को ही नहीं, अन्य अनेक पदार्थों को भी इधर-उधर कर सकेंगे।

इंग्लैंड के अति चमत्कारी जादूगर रॉबर्ट हडची की सौवीं वर्षगाँठ मनाई गई। अपने समय का वह अद्‌भुत व्यक्ति था। उसके जीवनकाल में इंग्लैंड के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'डेली मिरर' ने उसकी चमत्कारी शक्ति पर कई प्रकार के लांछन लगाए थे और आशंका प्रकट की थी। राबर्ट ने उन्हें चुनौती दी। फलस्वरूप परीक्षण के समय उसने यह करतब सबके सामने दिखाया, पूरी सावधानी और मजबूती के साथ हथकड़ी-बेड़ियों में जकड़ा गया, पर दो मिनट में ही उन्हें कच्चे धागे की तरह तोड़कर फेंकने में सफल हो गया। कमरे में बंद करके बाहर से ताला लगा देने पर भी वह सबके सामने बाहर निकल आया। सुरंगों में बंद करके बाहर से छेद पूरी तरह बंद कर दिये जाने पर भी वह बाहर निकला। तब भी उसने उस अवरोध को तोड़कर सबके सामने उपस्थित होने में सफलता पायी। यह सब कैसे संभव हो सका ? उसका रहस्योद्‌घाटन उसकी शताब्दी के अवसर पर उस वसीयत द्वारा होगा, जो उसने इसी अवसर पर सर्वसाधारण की जानकारी के लिए लिखकर अपने जीवनकाल में रख दी थी।

'वाराणसी की गलियों में एक दिगंबर योगी घूमता रहता था। गृहस्थ लोग उसके नग्न वेश पर आपत्ति करते थे, फिर भी पुलिस उसे पकड़ती नहीं', वाराणसी पुलिस की इस तरह की तीव्र आलोचनाएँ हो रही थीं। आखिर वारंट निकालकर उस नंगे घूमने वाले साधु को जेल में बंद करने का आदेश दिया गया।

पुलिस के आठ-दस जवानों ने पता लगाया, मालूम हुआ वह योगी इस समय मणिकर्णिका घाट पर बैठा हुआ है। जेष्ठ की चिलचिलाती दोपहरी, जबकि घर से बाहर निकलना भी कठिन होता है, एक योगी को मणिकर्णिका घाट के एक जलते तवे की भाँति गर्म पत्थर पर बैठे देख, पुलिस पहले तो सकपकायी, पर आखिर पकड़ना तो था ही, वे आगे बढ़े। योगी पुलिस वालों को देखकर ऐसे मुस्करा रहा था, मानो वह उनकी सारी चाल समझ

रहा हो। साथ ही वह कुछ इस प्रकार निश्चिंत बैठे हुए थे, मानो वह वाराणसी के ब्रह्मा हों। किसी से भी उन्हें भय न हो। मामूली कानूनी अधिकार पाकर पुलिस का दरोगा जब किसी से नहीं डरता, तो अनेक सिद्धियों-सामर्थ्यों का स्वामी योगी, भला किसी से भय क्यों खाने लगा ? तो भी उन्हें बालकों जैसी क्रीड़ा का आनंद लेने का मन तो करता ही है, यों कहिये आनंद की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य है। बाल-सुलभ सरलता और क्रीड़ा द्वारा ऐसे ही आनंद के लिए 'श्रीतैलंगस्वामी' नामक यह योगी भी इच्छुक रहे हों तो क्या आश्चर्य ?

पुलिस मुश्किल से दो गज पर थी कि तैलंग स्वामी उठ खड़े हुए और वहाँ से गंगाजी की तरफ भागे। पुलिस वालों ने पीछा किया। स्वामी जी गंगाजी में कूद गए। पुलिस के जवान बेचारे वर्दी भीगने के डर से कूदे तो नहीं, हाँ चारों तरफ से घेरा डाल दिया, लेकिन एक घंटा, दो घंटा, तीन घंटा—सूर्य भगवान् सिर के ऊपर थे, अब अस्ताचलगामी हो चले, किंतु स्वामी जी प्रकट न हुए। कहते हैं, उन्होंने जल के अंदर ही समाधि ले ली। उसके लिए उन्होंने एक बहुत बड़ी शिला पानी के अंदर फेंक रखी थी और यह जनश्रुति थी कि तैलंग स्वामी पानी में डुबकी लगा देने के बाद उसी शिला पर घंटों समाधि लगाए जल के भीतर ही बैठे रहते हैं।

उनको किसी ने कुछ खाते नहीं देखा, तथापि उनकी आयु ३०० वर्ष की बताई जाती है। वाराणसी में घर-घर तैलंग स्वामी की अद्भुत कहानियाँ आज भी प्रचलित हैं। निराहार रहने पर भी प्रति वर्ष उनका वजन एक पौंड बढ़ जाता था। ३०० पौंड वजन था उनका, जिस समय पुलिस उन्हें पकड़ने गई। इतना स्थूल शरीर होने पर भी पुलिस उन्हें पकड़ न सकी। आखिर जब रात हो चली तो सिपाहियों ने सोचा—'डूब गया शायद।' इसलिए वे दूसरा प्रबंध करने थाने लौट गए। इस बीच अन्य लोग बराबर

खड़े तमाशा देखते रहे, पर तैलंग स्वामी पानी के बाहर नहीं निकले।

प्रातःकाल पुलिस फिर वहाँ पहुँची। स्वामी जी इस तरह मुस्करा रहे थे, मानो उनके जीवन में सिवाय मुस्कान और आनंद के और कुछ है ही नहीं। शक्ति तो आखिर शक्ति ही है, संसार में उसी का ही तो आनंद है। योग द्वारा संपादित शक्तियों का स्वामी जी रसास्वादन कर रहे हों, तो आश्चर्य क्या ? इस बार भी जैसे ही पुलिस पास पहुँची, तैलंग स्वामी फिर गंगाजी की ओर भागे और उस पार जा रही नाव के मल्लाह को पुकारते हुए पानी में कूद पड़े। लोगों को आशा थी कि स्वामी जी कल की तरह आज भी पानी के अंदर छुपेंगे और जिस प्रकार मेढक मिट्टी के अंदर और उत्तराखंड के रीछ बर्फ के नीचे दबे, बिना श्वास के, वर्षों पड़े रहते हैं, उसी प्रकार स्वामी जी भी पानी के अंदर समाधि ले लेंगे। किंतु यह क्या, जिस प्रकार से वायुयान दोनों पंखों की मदद से इतने सारे भार को हवा में संतुलित कर तैरता चला जाता है, उसी प्रकार तैलंग स्वामी पानी में इस तरह दौड़ते हुए भागे, मानो वह जमीन पर दौड़ रहे हों। नाव उस पार पहुँच नहीं पायी, स्वामी जी पहुँच गए। पुलिस खड़ी देखती रह गयी।

स्वामी जी ने सोचा होगा कि पुलिस बहुत परेशान हो गई, तब वह एक दिन पुनः मणिकर्णिका घाट पर प्रकट हुए और अपने आप को पुलिस के हवाले कर दिया। हनुमानजी ने मेघनाथ के सारे अस्त्र काट डाले, किंतु जब उसने ब्रह्म-पाश फेंका तो वे प्रसन्नतापूर्वक बँध गये। लगता है श्री तैलंग स्वामी जी भी सामाजिक नियमोपनियमों की अवहेलना नहीं करना चाहते थे, पर यह प्रदर्शित करना आवश्यक भी था कि योग और अध्यात्म की शक्ति भौतिक शक्तियों से बहुत चढ़-बढ़कर है, तभी तो वे दो बार पुलिस को छकाने के बाद इस बार चुपचाप ऐसे बैठे रहे, मानो उनको कुछ पता भी न हो। हथकड़ी डालकर पुलिस तैलंग

स्वामी को पकड़कर ले गयी और हवालात में बंद कर दिया। इन्स्पेक्टर रात गहरी नींद सोया, क्योंकि उसे स्वामी जी की गिरफ्तारी मार्के की सफलता लग रही थी।

प्रस्तुत घटना 'मिस्ट्रीज ऑफ इंडिया एंड इट्स योगीज' नामक लुई द कार्टा लिखित पुस्तक से उद्धृत की जा रही है। कार्टा नामक फ्रांसीसी पर्यटक ने भारतवर्ष में ऐसी विलक्षण बातों की सारे देश में घूम-घूमकर खोज की। प्रसिद्ध योगी स्वामी योगानंद ने भी उक्त घटना का वर्णन अपनी पुस्तक "एन आटोबायोग्राफी ऑफ योगी" के ३१वें परिच्छेद में किया है।

प्रातःकाल ठंडी हवा बह रही थी। थानेदार साहब हवालात की तरफ आगे बढ़े, तो उस समय का दृश्य देखकर उनका शरीर पसीने में डूब गया, जब उन्होंने योगी तैलंग को हवालात की छत पर मजे से टहलते और वायु सेवन करते देखा। हवालात के दरवाजे बंद थे, ताला भी लग रहा था। फिर यह योगी छत पर कैसे पहुँच गया ? अवश्य ही संतरी की बदमाशी होगी। उन बेचारे संतरियों ने बहुतेरा कहा, कि हवालात का दरवाजा एक भी क्षण को खुला नहीं, फिर पता नहीं, साधु महोदय छत पर कैसे पहुँच गए ? वे इसे योग की महिमा मान रहे थे, पर इन्स्पेक्टर उसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। आखिर योगी को फिर हवालात में बंद कर दिया गया। रात दरवाजे में लगे ताले को सील किया गया। चारों तरफ पहरा लगा और चाबी लेकर थानेदार थाने में ही सोया। सबेरे बड़ी जल्दी कैदी की हालात देखने उठे, तो फिर शरीर में काटो तो खून नहीं। सील बंद ताला बा-कायदा बंद। संतरी पहरा भी दे रहे। जिस पर तैलंग स्वामी छत पर बैठे प्राणायाम का अभ्यास कर रहे। थानेदार की आँखें खुली की खुली रह गईं, उसने तैलंग स्वामी को आखिर छोड़ ही दिया।

श्री तैलंग स्वामी के बारे में कहा जाता है कि जिस प्रकार जलते हुए तेज कड़ाहे में, खौल रहे तेल में, पानी के छींटे डाले

जायें तो तेल की ऊष्मा उसे भाप बनाकर पलक मारते हुए उड़ा देती है, उसी प्रकार विष खाते समय एक-दो बार आँखें जैसी झपकतीं, पर न जाने कैसी आग उनके भीतर थी कि विष का प्रभाव कुछ ही देर में पता नहीं, चलता कहाँ चला गया ? एक बार एक आदमी को शैतानी सूझी। चूने के पानी को ले जाकर स्वामी जी के सम्मुख रख दिया और कहा—'महात्मन ! आपके लिए बढ़िया दूध लाया हूँ।' स्वामी जी उठाकर पी गए—उस चूने के पानी को, और अभी कुछ ही क्षण हुए थे कि कराहने और चिल्लाने लगा वह आदमी, जिसने चूने का पानी पिलाया था। स्वामी जी के पैरों में गिरा, क्षमा याचना की, तब कहीं पेट की जलन समाप्त हुई। उन्होंने कहा—'भाई मेरा कसूर नहीं। यह तो न्यूटन का नियम है कि हर क्रिया की एक प्रतिक्रिया अवश्य होती है। उसकी दिशा उल्टी और ठीक क्रिया की ताकत जितनी होती है।'

मनुष्य शरीर एक यंत्र, प्राण उसकी ऊर्जा, ईंधन उसकी शक्ति, मन इंजन और ड्राइवर है। चाहे जिस प्रकार के अद्‌भुत कार्य लिये जा सकते हैं इस शरीर से, भौतिक विज्ञान से भी अद्‌भुत। पर यह सब शक्तियाँ और सामर्थ्य योगविद्या, योगसाधना में सन्निहित हैं, जिन्हें अधिकारी पात्र ही पाते और आनंद-लाभ प्राप्त करते हैं।

अंग्रेजी भाषा की वैज्ञानिक पत्रिकाएँ 'नेचर' और 'न्यू साइंटिस्ट' विश्वविख्यात हैं। उनका संपादन और प्रकाशन विश्व के मूर्धन्य वैज्ञानिकों द्वारा होता है और उसमें प्रकाशित विवरणों को खोजयुक्त एवं तथ्यपूर्ण माना जाता है। इन्हीं पत्रिकाओं में 'यूरी गेलर' के शरीर में पाई गई अतींद्रिय शक्ति के प्रामाणिक विवरण विस्तारपूर्वक छपे हैं।

यूरीगेलर का जन्म २० दिसंबर, १९४६ में तेलअबीब में हुआ। उसकी माता जर्मन थीं। जब वह युवक साइप्रस में पढ़ता

था, तभी उसने अपने में कुछ विचित्रताएँ पाईं और उन्हें बिना किसी संकोच या छिपाव के अपने परिचितों को बताया-दिखाया। जब वह घड़ियों के निकट जाता तो सुइयाँ अकारण ही अपना स्थान छोड़कर, आगे-पीछे हिलने लगतीं। स्कूल के छात्रों के सामने उसने अपनी दृष्टि मात्र से धातुओं की बनी चीजों को मोड़कर ही नहीं, तोड़कर भी दिखाया।

उसने खुले मैदान में बिना किसी पर्दे या जादुई लाग-लपेट के, हर प्रकार के संदेहों के निवारण का अवसर देते हुए अनेक प्रदर्शन किए हैं। किसी को किसी चालाकी की आशंका हो, तो वह यह अवसर देता था कि तथ्य को किसी भी कसौटी पर जाँच लिया जाय। उसे जादूगरों जैसे करिश्मे दिखाने का न तो अभ्यास था, न अनुभव। सम्मोहन कला उसे नहीं आती। जो भी वह करता था, स्पष्टतः प्रत्यक्ष होता था। स्टैनफोर्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा आयोजित परीक्षण गोष्ठियों में मूर्धन्य वैज्ञानिकों के सम्मुख वह अपनी कड़ी परीक्षा में पूर्णतया सफल होता रहा। जर्मनी और इंग्लैंड के प्रतिष्ठित पत्रकारों के सम्मुख उसने अपनी विशेषता प्रदर्शित की है और टेलीविजन पर उसके प्रदर्शनों को दिखाया गया है।

यूरीगेलर दूर तक अपनी चेतना को फेंक सकता था, वहाँ की स्थिति जान सकता था। इतना ही नहीं, प्रमाणस्वरूप वहाँ की वस्तुओं को भी लाकर दिखा सकता था। उससे जब ब्राजील जाने और वहाँ की कोई वस्तु लाने के लिए कहा गया, तो उसने वैसा ही किया और वहाँ का विवरण सुनाने के साथ-साथ ब्राजील में चलने वाले नोटों का एक बंडल भी सामने लाकर रख दिया।

फिलाडेलफिया के दो वैज्ञानिकों के एक कक्ष में गैलर को मुलाकात देनी थी। उन प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के नाम हैं—आर्थर यंग और टेडबास्टिन। इन दोनों के सम्मुख भेंट देकर जब वे जीने से उतरकर नीचे की मंजिल में आए, तो ऊपर के कमरे में रखी

भारी मूर्ति भी नीचे उतर आई और उसके कंधे पर बैठ गई। सन् १६७१ में वे ओसीनिंग, न्यूयार्क निवासी एक सज्जन पुहरिख के साथ सिनाई रेगिस्तान की सैर पर गये थे। उन सज्जन के मूवी कैमरे का खोल अमेरिका ही रह गया था। फलतः फोटो खींचते समय लेंस के इर्द-गिर्द धूल जमती और कठिनाई उत्पन्न होती थी। यूरी गेलर ने ढक्कन रखे होने का स्थान पूछा और देखते-देखते अमेरिका से कैमरे का खोल वहीं मँगा दिया।

पूछने पर गैलर ने बताया कि यह क्षमता उन्हें बिना किसी प्रयास के अनायास ही मिली थी। इन प्रदर्शनों में उन्हें तंत्र-मंत्र आदि कुछ नहीं करना पड़ता। अदृश्य दर्शन के समय वे अपनी दृष्टि सीमित रखने के लिए एक साधारण-सा पर्दा खड़ा कर लेते थे और उसी पर उतरते चित्रों को टेलीविजन की तरह देखते रहते थे।

वह मेज पर रखे हुए धातुओं के बने मोटे उपकरणों को दृष्टि मात्र से मोड़ देने या तोड़ देने की विद्या में विशेष रूप से निष्णात था। ऐसे प्रदर्शन वह घंटों करता रह सकता था। सन् १६६६ में उसने आँखों पर मजबूत पट्टी बँधवाकर और ऊपर से सील कराकर इसराइल की सड़कों पर मोटर चलाई थी।

उसकी अदृश्य दर्शन की शक्ति भी अद्‌भुत थी। उसकी माता को जुएँ का चस्का था। जब वह घर लौटती, तो यूरी गैलर अपने आप ही बता देता कि वह कितना पैसा जीती या हारी है ?

इसकी अतींद्रिय विशेषताओं का परीक्षण वैज्ञानिकों और अन्वेषकों की मंडलियों के समक्ष कितनी ही बार हुआ था और वह निर्भ्रांत सिद्ध हुआ है।

२५ मार्च सन् १६०६ की घटना है। मनोविज्ञान शास्त्र के पितामह फ्रायड से मिलने के लिए उनके समकालीन मनःशास्त्री जुंग गये। चर्चा का विषय परा-मानसिक शक्ति का प्रभाव था।

फ्रायड इस तरह की किसी विशेष मानसिक क्षमता पर विश्वास नहीं करते थे। जुंग ने क्षमता के पक्ष समर्थन में अपनी क्षमता का एक विशेष प्रदर्शन किया। फ्रायड के कमरे में रखी वस्तुएँ इस तरह थर-थराने लगीं, मानो कोई तूफान उनकी उठक-पटक कर रहा हो। पुस्तकों की आलमारी में पटाखा फूटने जैसा धमाका हुआ। इससे फ्रायड चकित रह गये और उन्होंने अपनी असहमति का तुरंत परित्याग कर दिया।

उपरोक्त घटना का उल्लेख डॉ० नंडोर फोदोर ने अपने ग्रंथ 'बिटविन टू वर्ड्स' पुस्तक में किया है।

यह घटनाएँ ऐसी हैं, जिन्हें थोड़े व्यक्तियों ने प्रत्यक्षतः देखा होगा। अधिसंख्य वर्ग के लिए यह परी-कथाओं जैसा विवरण, किंवदंती या श्रद्धाभूत चमत्कार ही हो सकता है। कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जो इन बातों को निराधार और अवैज्ञानिक कहकर नकार दें। यह तभी होगा, जब ऐसे व्यक्तियों को इस तरह की अतींद्रिय घटनाओं की आधारभूत सत्यता के विज्ञान की जानकारी न हो। वास्तव में प्राणविद्या और उससे बनने वाले सूक्ष्म शरीर की जिसे तनिक भी जानकारी होगी, वह इस तरह की सामर्थ्यों को कभी भी न तो अंधश्रद्धा कहेगा, न अवैज्ञानिक। इन अतींद्रिय चमत्कारों की आधारभूत शक्ति इतनी समर्थ है कि उसकी तुलना में यह चमत्कार कुछ भी नहीं।

➢ अंतर्निहित प्रकाश और उसकी अपारशक्ति

आतिशी शीशे के द्वारा प्रकाश किरणें एक स्थान पर इकट्‌ठी कर दी जाएँ, तो उससे आग उत्पन्न हो उठती है। प्रकाश में अग्नि समाहित है, ऊर्जा है, विद्युत् है। इन शक्तियों की महत्ता हर कोई जानता है। किरणों की ही जादूगरी है कि शरीर जैसे जटिल यंत्र के भीतरी कल-पुर्जों की खराबी ज्ञात कर ली जाती है। एक्स-किरणों से आज सभी कोई परिचित है।

१९६४ में पहली बार अमेरिकी वैज्ञानिक डॉ० चार्ल्स टाउन ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकाश इससे भी अद्भुत और चमत्कारिक तत्त्व है। ऐल्यूमिनियम के ऑक्साइड का लाल (एक प्रकार का रत्न) जिसमें हल्की-सी मात्रा क्रोमियम की भी विद्यमान रहती है; इस लाल द्वारा साधारण-सी किरणों को जब उन्होंने "लेजर किरणों" में परिवर्तित किया, तो उनकी अपार शक्ति प्रकट हो गई। उद्देश्यहीन विचारों और शेखचिल्ली की कल्पनाओं से जिस तरह कोई उल्लेखनीय काम नहीं हो पाते, उसी प्रकार छितरे हुए प्रकाश कण भी अशक्त और निष्प्रयोजन ही मारे-मारे फिरते हैं। चार्ल्स टाउन ने इन्हें संसक्त कर दिया, तो उनकी शक्ति अपरिमित हो उठी। आज यही संसक्त लेजर किरणें संसार के आठवें आश्चर्य के रूप में गिनी जाती हैं। उसके लिए चार्ल्स टाउन को "नोबुल पुरस्कार" से भी अलंकृत किया गया। यद्यपि इन किरणों को १९६० में थ्यूडार साइमन नामक वैज्ञानिक ने भी खोज लिया था। संभव है उपयोग की प्रक्रिया न बता पाने के कारण नोबुल पुरस्कार उसे न दिया गया हो।

लेजर किरणों की शक्तिमत्ता के बारे में कहीं-किसी में दो रायें नहीं। अमेरिका ने एक ऐसा यंत्र बनाया है, जो एक ही लेजर किरण से ५० करोड़ वाट क्षमता की विद्युत् शक्ति उत्पन्न करता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह किरण अत्यंत बारीक और पतली होती है। फैली हुई किरणों को नियमित करने और उन्हें एक स्थान पर अनुशासित करने में एक ऐसे शीशे के लेन्स का उपयोग किया जाता है, जिसका व्यास एक सेंटीमीटर से हजारवें भाग जितना छोटा है। यदि इससे भी सूक्ष्म किया जाए तो इनकी शक्ति और भी भयंकर हो सकती है।

इस शक्ति का पता इसी बात से लगाया जा सकता है कि जिस कार्बन को पिघलाकर भाप बनाने में घंटों लगते हैं, लेजर किरणें उसे सेकंड के दस लाखवें हिस्से जितने कल्पनातीत समय

में ही वाष्पीभूत कर देती हैं। यह छूमंतर की तरह है और यह सोचने को विवश करता है कि भारतीय योगी ही नहीं, अन्य देशों के सिद्ध महापुरुष भी पल में किसी को अच्छा कर देते हैं। वे मारण, मोहन, उच्चाटन और दूर श्रवण, दूर दर्शन आदि आश्चर्यजनक शक्तियों से ओत-प्रोत होते हैं, उसमें क्या मानवीय चेतना इस प्रकाश तत्त्व का ही तो उपयोग नहीं करती ?

हीरा अत्यंत कठोर धातु है, उसे काटना और छेदना कठिन काम है। लेजर किरणें हीरे को-१/५०००० सेकंड में छेद सकती हैं, अर्थात् यदि ५०००० हीरे एक पंक्ति में रख दिये जाएँ और उनके एक छोर से लेजर किरण प्रवेश करा दी जाए, तो वह एक सेकंड में ही ५०००० हीरों को छेदकर रख देगी। सौ इंच व्यास की मोटी लकड़ी को आरा कई घंटों में काटेगा, लेजर उसे कुल १/७ सेकंड में काट देगा।

प्रकाश की इस संगठित-अनुशासित शक्ति का लाभ आँखों के ऐसे ऑपरेशन में भी मिला, जिनमें अस्त्र-शस्त्र तो छुए भी नहीं जा सकते। इस विधि द्वारा प्रकाश की किरणें ही आँख में प्रविष्ट करा दी जाती हैं और वह सूक्ष्म से सूक्ष्म ऑपरेशन कर देती हैं। कहते हैं—महाभारत काल में ऐसे आयुध थे, जो मंत्र शक्ति द्वारा चलाए जाते थे और वे इच्छानुसार काम करते थे, जबकि उनका कोई स्थूल रूप सामने नहीं आया करता था। नारायण अस्त्र, पाशुपत अस्त्र, सुदर्शन चक्र, वरुणास्त्र आदि इसी कोटि के थे। अब तक महाभारतकालीन इन शक्तियों के सिद्धांतों को—संभव है—अतिशयोक्ति माना जाता रहा है, पर लेजर-गनों ने अब यह बात सिद्ध कर दी कि ऐसे यंत्र और ऐसी सिद्धियाँ मात्र कल्पना नहीं तथ्यपूर्ण होनी चाहिए। कहते हैं, ब्रह्म अस्त्र को जो शीश झुका देता था, उसे वह नहीं मारता था। इस प्रकार का यंत्र कल्पनातीत-सा लगता है, पर लेजर किरणों में ऐसी भी विशेषता होती है। इनसे बनी बंदूक किसी भी रंग के गुब्बारे और पदार्थ

को तोड़कर नष्ट कर देती है, पर लाल रंग की यह किरणें लाल रंग से मोह करती हैं, उस पर वे आक्रमण नहीं करतीं, शांत और निष्प्रहारक रह जाती हैं।

महाभारत युद्ध के महान् समीक्षाकार संजय के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने योग-दृष्टि पाई थी, उनका तृतीय नेत्र जाग्रत् था। आज्ञाचक्र नामक भृकुटि मध्य की ग्रंथि में, भारतीय तत्त्वदर्शियों का कहना है कि मन को एकाग्र कर उसे विद्युत् चुंबकीय तरंगों के रूप में फैलाकर, कहीं भी भेजकर, किसी भी दिशा में वस्तुओं का ज्ञान, मौसम की पूर्व जानकारी, दूर श्रवण और ऐसे ही अन्य अनेक चमत्कारिक काम किए जा सकते हैं। उक्त धारणा की पुष्टि २१ जुलाई, १९६९ के दिन तब हो गई, जब अमेरिका का प्रथम समानव चंद्रयान चंद्रमा की धरती पर उतरा और उसके चालक कमांडर नील आर्मस्ट्रांग ने चंद्रमा की धरती पर उतरकर एक लेजर यंत्र वहाँ स्थापित किया। इस यंत्र की सहायता से एक किरण को तार की तरह का माध्यम बनाकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक बातचीत की जा सकती है, मौसम का पूर्वाभास किया जा सकता है, ग्रह-नक्षत्रों की दूरी नापी जाती है, दूर के दृश्य उतारे जा सकते हैं और अब उसका चिकित्सा जगत् में इस प्रकार उपयोग भी हो सकता है, जिसे बिल्कुल मंत्र चिकित्सा का रूप दिया जा सके।

लेजर किरणों ने प्रकाश की शक्ति का अणुबम से भी अधिक शक्तिशाली स्वरूप ला दिया है और अनुमान किया जाता है कि कुछ दिन में प्रकाश-विज्ञान आज की सारी उद्योग पद्धति के ढंग और ढाँचे को, सामाजिक रहन-सहन और संस्कृति को एकदम परिवर्तित कर दें, तो कुछ आश्चर्य नहीं। प्रकाश का उपयोग लोगों के मन की बातों को जानने जैसी गूढ़ बातों तक में हो सकता है।

निघंटु (५/६) में द्यु-स्थानीय ३१ देवताओं का वर्णन आता है। यह समस्त देव-शक्तियाँ एक ही चेतन सत्ता के विभाग कही गयी

हैं। प्रकाश वस्तुतः मूल चेतना का ही एक रूप है, उसके अनेक रूप अभी भी अविज्ञात हैं। जिस दिन उसकी संपूर्ण जानकारी मिल जायेगी, विश्व के किसी भी भाग में रहने वाले प्राणी के लिए समूची सृष्टि एक ऐसे गाँव की तरह हो जायेगी, जिसमें गिने-चुने मकान हों और चिर-परिचित थोड़े-से ग्रामवासी निवास करते हों।

मनुष्य शरीर में भी एक ऐसी ही सत्ता विद्यमान है, जिसे "प्राण" कहते हैं। शरीरगत ऊष्मा, चुंबकत्व, तेजोवलय, मोहकता, आदि उसी के प्रकट गुण हैं। अप्रकट रूप में इन प्राणमय स्फुलिंग से बने सूक्ष्म शरीर में लेजर किरणों की तरह की ऐसी अनेक अद्‌भुत सामर्थ्यें भरी हैं, जिन्हें पाकर मनुष्य जाग्रत् देवता और सजीव परमेश्वर ही सिद्ध हो सकता है। पिछले पृष्ठों पर दी गयी चमत्कारिक घटनाएँ—इसी शक्ति का प्रताप हैं, चाहे वह साधना द्वारा विकसित हों या दैवी अनुग्रह से प्राप्त।

योग विज्ञान में प्राण साधना द्वारा मिलने वाली अणिमा (शरीर को भाररहित कर लेना), गरिमा (भारी भरकम वजन बढ़ा लेना), लघिमा (छोटा हो जाना), महिमा (वृहदाकार होना), प्राप्त्य (कठिन वस्तुओं की सरलता से प्राप्ति), प्राकाम्य (इच्छा पूर्ति), ईशत्व (सर्वज्ञता), वशित्व (सभी को वशवर्ती कर लेना), आठ सिद्धियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने जो अतींद्रिय क्षमताएँ खोजी हैं, वे उन्हें चार वर्गों में विभक्त करते हैं—(१) क्लेयर वॉयेन्स (परोक्ष दर्शन) अर्थात् वस्तुओं या घटनाओं की वह जानकारी—जो ज्ञान प्राप्ति के सामान्य आधारों के बिना ही उपलब्ध हो जायें। (२) प्रीकॉग्नीशन (भविष्य ज्ञान)—बिना किसी मान्य आधार के भविष्य की घटनाओं का ज्ञान। (३) रेट्रोकॉग्नीशन (भूतकालिक ज्ञान) बिना किन्हीं मान्य-साधनों से अविज्ञात भूतकालीन घटनाओं की जानकारी। (४) टेलीपैथी (विचार-संप्रेषण)—बिना किसी आधार या यंत्र के अपने विचार दूसरों के पास पहुँचाना तथा दूसरों के

विचार ग्रहण करना। इस वर्गीकरण को और भी अधिक विस्तृत किया जाय, तो उन्हें ११ प्रकार की गतिविधियों में बाँटा जा सकता है।

चमत्कारी अनुभव निम्न वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) बिना किन्हीं ज्ञातव्य साधनों के सुदूर स्थानों में घटित घटनाओं की जानकारी मिलना।

(२) एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की मनःस्थिति तथा परिस्थिति का ज्ञान होना।

(३) भविष्य में घटित घटनाओं का बहुत समय पहले पूर्वाभास।

(४) मृतात्माओं के क्रिया-कलाप जिससे उनके अस्तित्व का प्रत्यक्ष परिचय मिलता हो।

(५) पुनर्जन्म की वह घटनाएँ जो किन्हीं बच्चों, किशोरों या व्यक्तियों द्वारा बिना सिखाए-समझाए बताई जाती हों और उनका उपलब्ध तथ्यों से मेल खाता हो।

(६) किसी व्यक्ति द्वारा अनायास ही अपना ज्ञान तथा अनुभव इस प्रकार व्यक्त करना, जो उसके अपने व्यक्तित्व और क्षमता से भिन्न और उच्च श्रेणी का हो।

(७) शरीरों में अनायास ही उभरने वाली ऐसी शक्ति जो संपर्क में आने वालों को प्रभावित करती हो।

(८) ऐसा प्रचंड मनोबल जो असाधारण दुस्साहस के कार्य विनोद की साधारण स्थिति में कर-गुजरे और अपनी तत्परता से अद्‌भुत पराक्रम दिखाए।

(९) अदृश्य आत्माओं के संपर्क से असाधारण सहयोग-सहायता प्राप्त करना।

(१०) शाप और वरदान, जिससे दीर्घकाल तक व्यक्तियों व वस्तुओं पर प्रभाव बना रहता है।

(११) परकाया प्रवेश या एक आत्मा में अन्य आत्मा का सामयिक प्रवेश सिद्ध होता है।

इन समस्त सिद्धियों का आधार प्राण साधना है, जिसके आधार पर प्राणमय कोश या प्राणमय शरीर का विकास, नियंत्रण और उपयोग किया जाता है। यह तथ्य अब तक भले ही श्रद्धाभूत रहे हों, किन्तु अब विज्ञान उन तथ्यों को स्वीकारने और उनका विवेचन भी करने लगा है। प्राण एक ऐसी शक्ति है, जिसका पूरी तरह उद्‌भव किया जा सके, तो मनुष्य उन दिव्य शक्तियों का स्वामी बन सकता है, जो सामान्य व्यक्ति के लिए महान् चमत्कार जैसी लगती हैं।

❒ ❒

दूरदर्शन के छिपे सत्य

कुछ दिन पूर्व अणुव्रत संघ के तत्त्वावधान में एक योग प्रदर्शन कार्यक्रम रखा गया था, उसमें अणुव्रत आंदोलन के एक मुनि ने कई चमत्कार दिखाए थे। तमाम देशों के राजदूत उसमें सम्मिलित थे। योगी ने अरब के राजदूत की धर्मपत्नी के बटुए में कितने नोट थे, बताए थे।

'मास्को न्यूज' के २२ अगस्त, १६८० के अंक में एक वोल्दया देन्शिक नामक आठ वर्षीय बालिका का विवरण छपा है। यह बालिका अंधेरे में भी अपने ओठों से देख लेती है। अत्यंत सूक्ष्म लिखे कागज के ऊपर पच्चीसों कागज ढंक देने पर भी वह सब कुछ बता देती है कि नीचे वाले कागज में क्या लिखा है ?

शिकागो अमेरिका के एक हिप्नोटिस्ट डॉ० स्टेनली मिशल ने दावा किया है कि टेड सेरियस नाम का उनकी पहचान का एक ऐसा व्यक्ति है, जो बिना बिंब के भी केवल मानसिक कल्पना द्वारा संसार के किसी भी दूरवर्ती स्थान का चित्र कैमरे में उतार सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह वर्तमान समय के ही हों, वह भूतकाल के भी, जबकि कैमरे का आविष्कार भी नहीं हुआ था, चित्र खींच देने की क्षमता रखता है। उदाहरण के लिए यदि वह चाहे तो सिकंदर के युद्ध, ईसा मसीह के क्रूस के समय वहाँ कौन-कौन उपस्थित थे, मिस्त्र के पिरामिड बनाते समय मजदूर जैसे काम करते थे, वह सब दृश्य, वह कैमरे में उतारकर दिखा सकता है।

इस तरह का समाचार सुनकर अमेरिका की विश्व विख्यात पत्रिका 'लाइफ' के संपादक पॉल बेल्च और उनके साथियों को बड़ी उत्सुकता हुई। उन्होंने 'लाइफ' कार्यालय का ही कैमरा

लिया। रील भी अपने हाथ से भरी और डॉ० मिशल के दफ्तर में जा पहुँचे।

टेड सेरियस एक कुर्सी पर बैठ गया। फिर उस कैमरे को गोद में लेकर इस तरह फिट किया कि उसका चेहरा लेन्स के सामने आ गया। अब वह भूतकाल की कोई घटना याद करता-सा जान पड़ा। मस्तिष्क में ध्यानावस्थित-सा होकर उसने कैमरे का बटन दबाया। पहले दो-तीन चित्र तो अस्पष्ट से उतरे, पर एक चित्र जो बिल्कुल स्पष्ट उतरा, वह यूनान की किसी अति प्राचीन मूर्ति का चित्र था। हजारों मील दूर, बिना चले वह भी अतिभूत की वस्तु का फ़ोटो निकाल देना सचमुच एक बड़ा आश्चर्य था।

चूँकि श्री मिशल महोदय सम्मोहन विद्या (हिप्नोटिज्म) के ज्ञाता थे, इसलिए श्री पॉल बेल्च को आशंका हुई कि संभव है— उनके सम्मोहित करने के फलस्वरूप यह फोटो आई हो, इसलिए उन्होंने दुबारा फिर अकेले टेड सेरियस को 'लाइफ' पत्रिका के कार्यालय में बुलाया। कैमरा की फिल्म भी 'लाइफ' कार्यालय द्वारा भरी गयी। पॉल बेल्च ने कहा—इस बार वह किसी १७ मंजिल की इमारत का ऐसा चित्र चाहते हैं, जिसकी खिड़कियाँ स्पष्ट दिखाई देती हों। सेरियस फिर पहले की तरह बैठा। वैसा ही चित्र मानसिक कल्पना द्वारा उसने कैमरे में उतार दिया। किस शहर की यह इमारत हो सकती है, इसका तो कुछ पता नहीं चल सका, पर वह चित्र 'लाइफ' पत्रिका में छपा था। लोगों को टेड सेरियस की इस विलक्षण क्षमता पर बड़ा आश्चर्य हुआ। टेड का यह भी कहना है कि आज तो लोग मुझे केवल कौतूहल से देखते हैं, पर मैं शीघ्र ही प्रमाणित कर दूँगा कि शरीर में एक प्रकाशपूर्ण सामर्थ्य है और वह एक स्थान पर बैठे हुए संसार भर को देख सकती है। टेड ने प्रथम विश्व-युद्ध और अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम के सिपाहियों के ऐसे चित्र भी उतारे हैं, जो तत्कालीन परिस्थितियों के हूबहू चित्रण हैं और इस बात के प्रमाण भी, कि

किसी एक बिंदु पर हम भूत और भविष्य को एक ही दृश्य में देख सकते हैं।

दरअसल समय कोई वस्तु नहीं, वह तो ब्रह्मांड अथवा आत्मा का विस्तार मात्र है, यदि हम उस मूल प्रकाश-बिंदु को प्राप्त कर लेते हैं, तो हम त्रिकालदर्शी, सर्वव्यापी, सब कुछ बन सकते हैं। चलने-फिरने, अनुभव करने के लिए आँख, कान, नाक और इंद्रियाँ आवश्यक नहीं, आत्मा का प्रकाश रूप अपने आप ही इन क्षमताओं से भरपूर है।

अभी तक माना जाता था कि कोई वस्तु देखनी हो, तो प्रकाश और आँखें—दो ही वस्तुएँ आवश्यक हैं। प्रकाश जब आँखों की रेटिना से टकराता है, तो आँखों का तंत्रिका-तंत्र (ज्ञान-कोश) एक विशेष प्रकार की रासायनिक क्रिया करके सारी सूचनाएँ मस्तिष्क को देता है। मन एक तीसरी वस्तु है, जो प्रकाश और आँखों के क्रिया-कलाप को अनुभव करता और नई तरह की योजनाएँ, आदेश, अनुभूतियाँ तैयार करके शरीर के दूसरे अवयवों में विभक्त करता है, अर्थात् मानसिक चेतना न हो तो प्रकाश और आँखों के होते हुए भी देखना संभव नहीं।

१९६७ में आँखों पर शोध के लिए जिन तीन वैज्ञानिकों को सम्मिलित नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया था, उनमें से एक डॉ० वाल्ड भी थे। उन्होंने 'रेटिना' (नेत्र का मध्य बिंदु) स्थित अणुओं की संरचना बताते समय एक 'विजुअल पर्पिल' (रोडोप्सिन) नामक विलक्षण तत्त्व की बात बताई और कहा कि, वास्तव में यही प्रकाश कणों को विद्युत् तरंगों में बदलता है, यह विद्युत् तरंगें ही मस्तिष्क में जाकर छायांकन करती हैं। इससे एक बात और भी मालूम होती है कि प्रकाश सीधे वस्तु दिखा सकने में सक्षम नहीं, जब तक उसे विद्युत् आवेग की क्षमता में न बदला जाए।

मन प्रकाश ही नहीं, एक प्रकार की विद्युत् तरंग जैसा है। इसलिए यदि वह वस्तुओं का दृश्य बनाने में सीधे सक्षम हो, तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए। ऐसे भी अनेक उदाहरण दिखाई देते हैं, जब प्रकाश को 'रेटिना' (पुतली का केंद्र बिंदु) द्वारा विद्युत् आवेग में बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती और कुछ लोग केवल त्वचा, गाल अथवा शरीर के और किसी भाग से ही देख लेते हैं।

'ब्रिटिश जनरल ऑफ मेडिकल हिप्नोटिज्म' ने एक ऐसा ही समाचार छापकर बताया कि बैंकाक में तो एक संस्था ही काम करती है, जो अंधों को गालों से देखने का प्रशिक्षण देती है। उसके संचालकों का दावा है कि मनुष्य के गाल शरीर भर के समस्त अंगों की अपेक्षा अति संवेदनशील हैं और उनमें सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्तियों का प्रचुर प्रवाह विद्यमान रहता है। चुंबन का महत्त्व और निर्देश इसीलिए है कि इस संवेदनशील अंग का उपयोग केवल उचित प्रयोजन के लिए और व्यक्ति की सूक्ष्म क्षमताओं का सदुपयोग करने के लिए ही किया जा सके।

सन् १९५४ में बैंकाक के एक डॉक्टर ने मनोविज्ञान की सहायता से एक प्रयोग १३ वर्ष के लड़के पर किया। उल्लेखनीय है कि उसे मनोविज्ञान की ट्रेनिंग के साथ ही ध्यान और समाधि लगाना भी बताया जाता था। ध्यान में उसे गाल में चित्त एकाग्र करने को कहा जाता है। ६ महीने के इलाज के बाद उसमें गालों से देखने की क्षमता आ गयी। इसके बाद दस और अंधों पर प्रयोग किया गया, जिनमें से छह इस प्रयोग में पूर्ण सफल रहे। अब वे गालों से मजे में देख लेते हैं।

यह उदाहरण बताते हैं कि संसार में कोई ऐसा महत्त्व है, जिसकी सीमित मात्रा विकसित करके भी विलक्षण शक्तियों का जागरण किया जा सकता है। यह तो वैज्ञानिक भी मानते हैं कि प्राणी के अंदर तंतुओं का ऐसा जाल फैला है कि कैसी भी नई

समस्या आए, उसका भी निराकरण प्रस्तुत कर देने की उनमें क्षमता है। चमड़े की आँखों से जो दिखता है, जो देखा जा सकता है, वह बहुत स्वल्प है। यदि इतनी ही परिधि तक देख सकना संभव हो सके, तो उसे बहुत ही नगण्य उपलब्धि कहा जा सकेगा।

यों देखने का काम आँखों के लेन्स ही करते हैं, पर उनकी सीमा बहुत छोटी है। कुछ ही दूरी पर उनकी सीमा समाप्त हो जाती है। स्पष्ट दीखने वाली वस्तुएँ ही उनकी परख-पकड़ में आती हैं, पर यह संसार बहुत विस्तृत है। सब पदार्थों के स्वरूप दृश्यमान नहीं हैं। जो दीखता है उनसे अनदेखा बहुत ज्यादा है। अणुओं की गतिविधियों को ही लें, वे आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रों से भी अधिक संख्या में हैं और उनसे भी अधिक सक्रिय हैं। अपने शरीर में काम करने वाले परमाणुओं, जीवाणुओं, शक्तिघर के विद्युत् प्रवाहों एवं क्रिया-कलापों को देख सकना, समझ सकना संभव हो सके, तो वह इतना ही विस्तृत, अदभुत एवं अन्वेषण योग्य प्रतीत होगा, जितना कि यह विराट्-विश्व ब्रह्मांड। आँखें वह सब कहाँ देख पाती हैं ?

प्रत्यक्ष जगत् के दृश्य-पदार्थों में भी हमारी दृष्टि में एक छोटा-सा क्षेत्र ही आता है, जाननी तो आगे की बातें भी पड़ती हैं। वह प्रयोजन चिट्ठियों से, अखबारों, तार, टेलीफोन, रेडियो आदि से पूरा होता है। आँखों की क्षमता से काम चलता न देखकर हमें जानकारी के क्षेत्र दूसरे साधनों से बढ़ाने पड़ते हैं, जिसके पास यह साधन जितने अधिक होते हैं, वह उतना ही अधिक लाभान्वित होता है।

स्थूल दृष्टि की समीपता से आगे असीम तक विस्तृत होने वाला एक और नेत्र हमारे पास है, जिसे सूक्ष्म दृष्टि या दिव्य-दृष्टि कहते हैं। योग साधना द्वारा कोई चाहे तो इस नेत्र को विकसित कर सकता है और चर्म-चक्षुओं की परिधि से बहुत आगे

की परिस्थितियों एवं घटनाओं को भली प्रकार देख सकने में समर्थ हो सकता है।

टेलीफोन के माध्यम से आवाज को सुदूर प्रदेशों तक पहुँचाने की विद्या बहुत पहले ज्ञात हो गई थी। इसके बाद रेडियो प्रणाली से परस्पर बैठे हुए व्यक्तियों का, बिना तार के ही, केवल ध्वनि कंपनों की सहायता से वार्तालाप करना संभव हुआ। टेलीविजन प्रणाली में चित्रों को दूर-दूर तक भेजना संभव हुआ। अब उसमें एक कदम और आगे बढ़ा है। फोटोग्राफी भी इसी संचार-प्रक्रिया के साथ जुड़ गई है। इसे ऐसे मानना चाहिए, जैसे—दर्पण और फोटो कैमरा। दर्पण के सामने खड़े होने पर चित्र दीखता है, पर हटते ही वह चित्र गायब हो जाता है। कैमरे की बात दूसरी है। उसके सामने खड़े होकर फोटो उतारा जाए, तो वह स्थायी बना रहेगा। टेलीविजन को दर्पण कहा जाए, तो इस 'विद्युत्-आवृत्ति संचार व्यवस्था' को कैमरे की फोटोग्राफी मानना पड़ेगा, जो क्षण भर में एक स्थान का फोटो पृथ्वी के इस छोर से उस छोर पर भेज देती है।

अखबारों में जो विश्व भर की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के फोटो दूसरे ही दिन छप जाते हैं, इसका कारण यही प्रणाली है। 'टेलैक्स' प्रणाली में भी यह विशेषता अधिक बारीकियों से भरी हुई है। भारत में ऐसा संचार केंद्र पूना के पास 'आर्वी' में छोटी पहाड़ियों के बीच बना हुआ है। इसे 'इंटेल्साट-३' कहते हैं। इसकी संचार तरंगें बंबई के स्टील टावर में पहुँचती है। वहाँ फ्लोरा फाउंडेशन के निकट बना हुआ अठारह मंजिल वाला संचार भवन उन तरंगों को ग्रहण करता है और फिर शक्तिशाली उपकरणों के माध्यम से अभीष्ट स्थानों पर भेज देता है। प्रेषण जैसी ही ग्रहण व्यवस्था भी उन संयंत्रों में है। विदेशों से आने वाले फोटो यहीं ग्रहण किये जाते हैं और उनकी अनेक प्रतियाँ छापकर तत्काल अखबारों को अथवा संबंधित

सरकारी विभागों को भेज दिये जाते हैं। फोटो ही नहीं, महत्त्वपूर्ण नक्शे, कागजात, पत्र आदि भी तत्काल इसी पद्धति के माध्यम से भेजे और ग्रहण किए जाते हैं।

अन्यत्र भेजे जाने वाले फोटो एक बड़े बेलन पर चिपका दिए जाते हैं। यह बेलन ६० चक्कर प्रति मिनट के हिसाब से घूमता है। साथ ही प्रति इंच सौ रेखाएँ भी गतिशील करता है। प्रकाश का एक केंद्रित पुंज उस फोटो पर डाला जाता है, परावर्तित प्रकाश एक लेन्स की सहायता से प्रकाश कोशिका पर केंद्रित होता है। यहाँ प्रकाश की विविधता—विविध विद्युत् कंपनों में बदल जाती है। रंगों के उतार-चढ़ाव के हिसाब से इन विद्युत् कंपनों में अंतर हो जाता है। सफेद रंग के लिए १५०० साईकिल, काले रंग के लिए २३००, भूरे रंग के लिए ८०० साईकिल प्रति सेकंड आवृत्ति होती है। अब इन कंपनों को रेडियो संचार प्रणाली के द्वारा विश्व के किसी भी कोने पर भेज दिया जा सकता है। जहाँ इन चित्रों को पकड़ा जाता है, वहाँ भी रेडियो-ध्वनि ग्रहण करने जैसे यंत्र लगे रहते हैं। वे यंत्र उन विद्युत् कंपनों को पकड़कर उन्हें चित्र रूप में परिवर्तित कर लेते हैं। अपने देश में ऐसे-ऐसे चौबीस से अधिक रेडियो फोटो चैनल हैं, जिनका संबंध संसार के चौंतीस प्रमुख देशों से है।

इस संचार उपग्रह पद्धति की रूसी प्रणाली 'डार्विटा' कहलाती है। अमेरिका की अपनी प्रणाली है। सन् १९६६ से लेकर सन् १९८० तक अमेरिका ने लगभग ६०० से अधिक अंतरिक्ष यान छोड़े जिनमें से ५५० से अधिक अभी भी पृथ्वी की विभिन्न कक्षाओं में घूम रहे हैं। रूस से हर साल ५० और १०० के बीच में इस प्रकार के उपग्रह भेजे जाते रहे हैं। यह कृत्रिम अंतरिक्ष उपग्रह मौसम शोध से लेकर खगोलीय परिस्थितियों की जानकारी अपने मूल केंद्र को भेजते रहे हैं। ऐसे ही उपग्रह इस रेडियो फोटो संचार पद्धति को संचालित रखने में सहायता करते हैं। इस

'इंटेल्साट' उपग्रह पद्धति का विकास करके शब्द-संचार की तरह चित्र संसार की सुविधा भी सरल बनाई जा सकती है और हम घर बैठे विश्व की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को सिनेमा के पर्दे पर देखी जाने वाली फिल्मों की तरह प्रत्यक्ष देख सकते हैं। टेलीविजन में अभी जो छोटे दायरे से ही काम करने की कठिनाई है, वह भी इस प्रणाली में दूर की जा सकती है।

यह दूरदर्शन का कार्य टेलीविजन यंत्र करते हैं। चित्रों को दूर तक भेजने वाली यह रेडियो फोटोग्राफी भी काम में आ रही है। टेलीस्कोप, माइक्रोस्कोप आदि सूक्ष्मदर्शी और सुदूरदर्शी यंत्र भी नेत्र-शक्ति की समीपता को बढ़ाकर विस्तृत और व्यापक बनाते हैं। यह साधन जिनके पास हैं, वे इन यंत्रों की मर्यादा के अनुरूप काम उठा लेते हैं।

भगवान् का दिया हुआ एक ऐसा ही यंत्र मनुष्य के पास भी है, जिसे दृष्टिवर्धन के अद्यावधि आविष्कारों की सम्मिलित उपलब्धियों से भी कहीं अधिक समर्थ और व्यापक कहा जा सकता है। न इसे खरीदना पड़ता है और न इसके संचालन की कोई बड़ी शिक्षा लेनी पड़ती है। भ्रूमध्य भाग में अवस्थित आज्ञा चक्र अपना तीसरा नेत्र है। इसे खोलने की साधना करने से वह अंतर्ज्योति विकसित हो सकती है, जिसके माध्यम से लोक-लोकांतरों को, भूगर्भ को, पंच भौतिक परिस्थितियों को देखा और समझा जा सके। इतना ही नहीं, इस तीसरे नेत्र में वह शक्ति भी है कि जीवित प्राणियों की मनःस्थिति, भावना, कल्पना, योजना, इच्छा, आस्था एवं प्रकृति को भी समझा जा सके। इस आज्ञा-चक्र को विकसित करने की साधना हमें दृष्टि की प्रखरता और व्यापकता का अनुपम उपहार दे सकती है। यह उपहार न केवल वर्तमान का ही परिचय प्राप्त करने में समर्थ है, वरन् चिर अतीत में जो घटित हो चुका और निकट भविष्य में जो होने जा रहा है, उसका पूर्वाभास भी जाना जा सकता है।

➢ आज्ञा-चक्र

शिव और पार्वती के चित्रों में उनका एक पौराणिक तीसरा नेत्र भी दिखाया जाता है। कथा के अनुसार शंकर भगवान् ने इसी नेत्र को खोलकर उसमें से निकलने वाली अग्नि से कामदेव को भस्म किया था। यह दिव्य दृष्टि का केंद्र है। इससे टेलीविजन जैसा कार्य लिया जा सकता है। दूरदर्शन का दिव्य यंत्र यहीं लगा हुआ है। महाभारत के सारे दृश्य संजय ने इसी माध्यम से देखे और धृतराष्ट्र को सुनाए। चित्रलेखा द्वारा अनिरुद्ध-प्रणय इस दिव्य-दर्शन का ही परिणाम था।

यह तीसरा नेत्र अति प्रभावशाली है। इससे दूरदर्शन ही नहीं, अदृश्य और प्रत्यक्ष भी देखा, समझा जा सकता है। एक्स-रे की किरणें जिस तरह ठोस पदार्थों में होकर भी पार चली जाती हैं और आँखों से न दीख पड़ने वाली वस्तुओं के भी चित्र खींचती हैं, उसी प्रकार यह आज्ञा-चक्र का कैमरा अदृश्य को देख सकता है। इसके माध्यम से न केवल पदार्थों को देखने का प्रयोजन पूरा होता है, वरन् जीवित प्राणियों की मनःस्थिति को समझना भी संभव होता है। देखने-समझने से ही बात पूरी नहीं होती, आज्ञा-चक्र की क्षमता इससे भी आगे है, वह दूसरों को प्रभावित-परिवर्तित भी कर सकती है। मेस्मेरिज्म, हिप्नोटिज्म में इसी दिव्य क्षमता को स्थूल नेत्रों के माध्यम से प्रयोग किया जा सकता है।

यह आज्ञा-चक्र और कुछ नहीं, पर्याप्त मात्रा में अर्जित प्राणों को कपाल के मध्य पर्दे पर—भूमध्य में केंद्रित करना (फोकस) और फिर उसके निक्षेप द्वारा तरह-तरह की जानकारियाँ एकत्र कर लेना है। यह उक्त विज्ञान की तरह ही नितांत प्रायोगिक तथ्य है, मात्र कल्पना या अतिरंजन नहीं।

➢ विचार संप्रेषण विज्ञान

विचार एक प्रकार से प्राणों पर सवार विद्युत् चुंबकीय स्पंदन ही है। गायत्री उपासकों को कई बार अपने स्वजनों से ऐसे संदेश अनायास मिलते देखे गये हैं, जिन्हें मानो बेतार के तार द्वारा संप्रेषित किया गया हो। गायत्री जप और कुछ नहीं, प्राणों के संचय की ही साधना है। विश्व-प्राणों की इतनी मात्रा अपने में भरी जा सकती है, जो ठीक ट्रान्समीटर का कार्य करने लगे। अगले अध्यायों में इस साधना के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा रहा है। संक्षेप में यह समझ लेना आवश्यक है कि विचारों की तीक्ष्णता या निर्बलता और कुछ नहीं, प्राणों का ही अल्प या अत्यधिक होना है।

शरीर में काम करने वाली विद्युत् शक्ति से ही दैनिक जीवन के विभिन्न क्रिया-कलाप पूरे होते हैं। इस संयंत्र के विभिन्न कलपुर्जे इसी शक्ति से प्रेरित होकर अपने-अपने काम करते हैं। इसकी अधिक मात्रा उत्पन्न की जा सके, तो उसका लाभ दूसरों को भी दिया जा सकता है। धन-दान, रक्त-दान, अंग-दान आदि के द्वारा एक मनुष्य दूसरे को लाभान्वित कर सकता है। ठीक इसी प्रकार प्राण-दान भी संभव हो सकता है। अपनी जीवनी शक्ति का एक अंश दूसरों को देकर, उनमें नव-जीवन का संचार अमुक मात्रा में किया जा सकता है। मेस्मेरिज्म विद्या द्वारा शारीरिक और मानसिक चिकित्सा की जाती है और उसका लाभ औषधि उपचार से कम नहीं, वरन् अधिक ही मिलता है।

मनुष्य शरीर में रहने वाली विद्युत् शक्ति का परिचय अब साधारण यंत्र, उपकरणों से जाँचा-परखा जा सकता है। वह एक अच्छा-खासा जेनरेटर है। किसी-किसी में तो अनायास ही यह विद्युत् प्रवाह बढ़ी-चढ़ी मात्रा में होता है। कई उसे प्रयत्नपूर्वक बढ़ा सकते हैं। बिजली से अनेकों प्रकार के प्रयोजन पूरे होते हैं। उसका उपयोग करके कई तरह के उपकरण क्रियाशील होते और लाभ देते हैं। शरीरगत विद्युत् से संपर्क क्षेत्र को किसी विशेष

दिशा में उत्तेजित किया जा सकता है। किन्हीं व्यक्तियों को प्रभावित करके उनके चिंतन एवं चरित्र को मोड़ा जा सकता है। इतना ही नहीं, उन्हें स्वास्थ्य, बल, ज्ञान, पराक्रम जैसी विभूतियों से लाभान्वित किया जा सकता है।

सूक्ष्म जगत् में काम कर रही शक्तियाँ स्थूल पदार्थों को किस प्रकार प्रभावित करती हैं ? इसके उदाहरण आये दिन दीखते हैं। आकाश में उष्णता बढ़ते ही हमारे बर्तन गरम और ठंडक का मौसम आते ही वे ठंडे रहने लगते हैं। वर्षा ऋतु में हवा की नमी मात्र से घास-पात में हरियाली दौड़ जाती है। रेडियो, और टेलीविजन के उपकरण अंतरिक्ष में चल रहे सूक्ष्म-प्रवाहों से प्रभावित होते और अपने काम करते देखे जाते हैं। इसी सिद्धांत के आधार पर मनोबल की शक्ति-तरंगें आकाश में उड़ाई जा सकती हैं और उससे निकटवर्ती एवं दूरवर्ती व्यक्तियों तथा पदार्थों को प्रभावित किया जा सकता है।

मनुष्यों एवं प्राणियों की तरह ही मनोबल के द्वारा पदार्थों को भी प्रभावित किया जा सकता है। उन्हें हटाया, उठाया, हिलाया, गिराया जा सकता है। उनमें अन्य प्रकार की हलचलें एवं विशेषताएँ पैदा की जा सकती हैं। उनका स्वरूप तक बदला जा सकता है और गुण भी। आग और बिजली की सहायता से पदार्थों के आकार-प्रकार में परिवर्तन हो सकता है, ऐसा मनोबल के उपयोग से भी संभव है। कई चमत्कार प्रदर्शनों में ऐसी घटनाएँ प्रयत्नपूर्वक प्रत्यक्ष की जाती हैं, जिनमें मनोबल ने जड़-पदार्थों में अस्वाभाविक हलचलें पैदा कर दीं अथवा उनके सामान्य क्रिया-कलाप को अवरुद्ध कर दिया। बिना प्रदर्शन के भी ऐसे घटनाक्रम सामान्य जीवनक्रम में भी घटित होते रहते हैं, जिनमें व्यक्ति विशेष के संपर्क अथवा संकल्प के कारण वस्तुओं के स्वरूप एवं क्रिया-कलाप में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। विद्युत्-प्रवाह की तरह ही यदि मनोबल को भी एक शक्तिधारा

माना जा सके, तो फिर उसके द्वारा संपन्न होने वाले क्रिया-कलापों को भी आश्चर्यजनक नहीं, वरन् सामान्य ही माना जायेगा।

आग और गर्मी का अंतर स्पष्ट है। आग प्रत्यक्ष है—स्थूल है। इसलिए उसे आँखों से देखा जा सकता है और इधर से उधर हटाया, जलाया, बुझाया जा सकता है। गर्मी सूक्ष्म है, व्यापक है। इसलिए उसे अनुभव तो किया जा सकता है, पर देखा नहीं जा सकता। उसे हम पकड़ भी नहीं सकते और न धकेल सकते हैं। अधिक से अधिक कूलर आदि के द्वारा अपना कमरा ठंडा रख सकते हैं, पर गर्मी की ऋतु ही बदल देना संभव नहीं। आग स्थूल है, इसलिए उसे जलाया भी जा सकता है और बुझाया भी। बिजली, भाप एवं ईंधन आदि के माध्यम से उत्पन्न होने वाली शक्ति का प्रत्यक्ष प्रयोग रोज ही होता है। इसलिए उसे हम सहज ही पहचानते हैं। मनोबल का सामान्य प्रयोग एक-दूसरे को प्रभावित करने भर में होता है, पर यदि उसे विकसित एवं व्यवस्थित स्थिति में किसी विशेष लक्ष्य के लिए प्रयुक्त किया जा सके, तो प्रतीत होगा कि वह भी कितना शक्तिशाली है ? उसके आधार पर व्यक्ति को ही नहीं, पदार्थों और परिस्थितियों को भी प्रभावित किया जा सकता है।

एलेग्जेंडर राल्फ ने 'द पावर ऑफ माइंड' नामक पुस्तक में विभिन्न प्रमाण देते हुए लिखा है—"प्रगाढ़ ध्यान-शक्ति द्वारा एकाग्र मानव-मन शरीर के बाहर स्थित सजीव एवं निर्जीव पदार्थों पर भी इच्छानुकूल प्रभाव डाल सकता है।" राल्फ का कहना है कि, यह एक निर्विवाद तथ्य है कि इच्छा-शक्ति द्वारा स्थूल जगत् पर नियंत्रण संभव है।

इलेक्ट्रॉनिक ब्रेन के निर्माण की प्रक्रिया में ज्ञात तथ्यों द्वारा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि, अचेतन मन एक सशक्त कंप्यूटर की तरह कार्य करता है और जिस तरह एक कंप्यूटर, की गयी 'फीडिंग' के अनुसार ही क्रियाशील होता है, उसी तरह अवचेतन भी अपना आहार हमारे विचारों तथा संकल्पों से प्राप्त

करता है। इस तरह अवचेतन की दिशा मनुष्य की इच्छाओं से ही प्रभावित होती है। स्पष्ट है कि इस अवचेतन पर व्यक्ति प्रयास द्वारा पूर्ण नियंत्रण पा सकता है और तब सभी अलौकिक लगने वाले काम कर सकता है।

व्यक्ति स्वयं अपना विद्युत्-चुंबकीय बलक्षेत्र या गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र विकसित कर सकता है, ऐसा वैज्ञानिक मानने तो लगे, पर उसका आधार एवं प्रक्रिया अभी तक नहीं जान पाए हैं। मनुष्य चलता-फिरता बिजलीघर है। उसका भीतरी समस्त क्रिया-कलाप स्नायु जाल में निरंतर बहते रहने वाले विद्युत्-प्रवाह से ही संपादित होता है। बाह्य जीवन में ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों द्वारा जो विभिन्न प्रकार की हलचलें होती हैं, उनमें खर्च होने वाली ऊर्जा वस्तुतः मानवी विद्युत्-शक्ति ही होती है। रक्त जैसे रासायनिक पदार्थ तो मात्र उसके निर्माण में ईंधन भर का काम देते हैं।

रूसी सेना की सार्जेंट नेल्या मिखाइलोवा अपनी इच्छा-शक्ति से स्थिर रखे जड़-पात्रों को गतिशील कर देती हैं, चलती घड़ी को रोक सकती हैं और पुनः चला सकती है। उसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले इन चमत्कारों को वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा प्रामाणिक ठहराया जा चुका है।

शक्ति के बिजली, भाप, तेल जैसे साधनों में भी अब विचार-शक्ति को भी स्थान मिलने जा रहा है। अध्यात्मशास्त्र में तो आरंभ से ही विचारों को ऐसा समर्थ तत्त्व माना गया है, जो न केवल अपने उद्‌गमकर्ता को, वरन् पूरे संपर्क क्षेत्र को भी प्रभावित करता है। इतना ही नहीं, उससे दूरवर्ती एवं अपरिचित प्राणियों तथा पदार्थों तक को प्रभावित किया जा सकता है।

टेलीपैथी के एक प्रयोगकर्ता, इंग्लैंड के ए० एन० क्रीरी ने बहुत समय तक यह प्रयोग चलाया कि, बंद कमरे में क्या हो रहा है ? इसकी जानकारी प्राप्त की जाय। इस प्रयोग में एक महिला अधिक दिव्यदृष्टिसंपन्न सिद्ध हुई।

क्रीरी ने अपने प्रयोगों की सचाई जाँचने के लिए अनेक प्रामाणिक व्यक्तियों से अनुरोध किया। जाँचने वालों में डबलिन विश्वविद्यालय के प्रो० सर विलियम वैरट, इंग्लैंड की सोसाइटी फार साइकिक रिसर्च के प्रधान प्रो० सिजविग जैसे मूर्धन्य लोग थे। उन्होंने कई तरह से उलट-पुलटकर इन प्रयोगों को देखा और उन प्रयोगों के पीछे निहित सचाई को स्वीकारा। इन प्रयोगों की जाँच का विवरण 'विचार संप्रेषण समिति' ने प्रकाशित किया है।

दूरवर्ती लोगों के मस्तिष्कों को प्रभावित करने और उनमें अभीष्ट परिवर्तन लाने की दिशा में आस्तिकों और नास्तिकों को समान रूप से सफलता मिली है। इन प्रयोगों में रूसी वैज्ञानिक भी योग-साधकों के पद-चिह्नों पर चल रहे हैं। लेनिनग्राड विश्वविद्यालय के शरीर विज्ञानी प्रो० लियोनिद वासिलयेव ने दूरसंचार क्षमता का प्रयोग एक शोध-कार्यों में निरत मंडली पर किया। उसने अपने प्रयोगों द्वारा चालू शोध के प्रति धीरे-धीरे उदासीन होने और उसे छोड़कर अन्य शोध में लाने का प्रयोग चालू रखा और इसके सफल परिणाम पर सभी को आश्चर्य हुआ। लियोनिद ने अपना अभिप्राय गुप्त कागजों में नोट करके साथियों को बता दिया था कि वे अमुक शोध मंडली की मनःस्थिति में उच्चाटन उत्पन्न करके अन्य कार्य में रुचि बदल देंगे। कुछ समय में वस्तुतः वैसा ही परिवर्तन हो गया और उस मंडली ने बड़ी सीमा तक पूरा किया गया अपना कार्य रद्द करके नया कार्य हाथ में ले लिया।

इतिहास, पुराणों की बात छोड़ दें, तो भी प्रत्यक्षदर्शियों की प्रामाणिक साक्षियों के आधार पर यह विश्वास किया जा सकता है कि, विचार और शब्द के मिश्रण से बनने वाले मंत्र-प्रवाह का प्रयोग करके वातावरण तक में हेर-फेर करने की सफलता मिल सकती है।

अफ्रीकी जन-जातियों की तरह ही मलाया में भी मंत्र विद्या के प्रयोग और चमत्कार बहुत प्रस्तुत होते रहते हैं। वहाँ के मांत्रिक ऋतु परिवर्तन को भी प्रभावित करते देखे गए हैं।

विचारों की शक्ति का सामान्य जीवन में भी महत्त्वपूर्ण उपयोग होता रहता है। उन्हीं के आधार पर क्रिया-कलाप बनते हैं और तदनुरूप परिणाम सामने आते हैं। बहिरंग व्यक्तित्व वस्तुतः मनुष्य के अंतरंग की प्रतिक्रिया भर ही होता है। विचारों से समीपवर्ती लोग सहयोगी-विरोधी बनते हैं। निंदा और प्रशंसा के आधारों की जड़ें अंतःक्षेत्र में ही गहराई तक धँसी होती हैं। सामान्य स्तर की विचार-शक्ति भी जीवन का क्रम बनाती है, तो फिर विशेष स्तर की विचार-शक्ति जो योगाभ्यास के साधना विज्ञान के आधार पर तैयार की जाती है, चमत्कारी परिणाम उत्पन्न कर सके, तो इसे अबुद्धि-सम्मत नहीं कहा जा सकता। मंत्र शक्ति के प्रयोगों में जहाँ दंभ और बहकावे की भी भरमार रहती है, वहाँ ऐसे प्रामाणिक प्रसंगों की भी कमी नहीं होती, जिनके आधार पर इस अलौकिकता का आधार समझ में न आने पर भी उसे अविश्वस्त नहीं कहा जा सकता।

कई बार ऐसा भी देखा गया है कि किन्हीं व्यक्तियों में वस्तुओं को विचार-शक्ति से प्रभावित करने की क्षमता अनायास ही पाई जाती है। उन्होंने कोई योगाभ्यास नहीं किया, तो भी वे अदृश्य को देख सकने, अविज्ञात को जान सकने में समर्थ रहे। ऐसी विलक्षणता हर मनुष्य के अचेतन मन में मौजूद है। मानवी विद्युत् सामान्यतया दैनिक क्रिया-कलापों में ही खर्च होती रहती है, पर यदि उसे बढ़ाया जा सके, तो कितने ही विलक्षण कर्म भी हो सकते हैं। साधना से दिव्य क्षमता बढ़ती है और उससे कितने ही प्रकार के असामान्य कार्य कर सकना संभव होता है। यह आध्यात्मिक उपलब्धियाँ अगले जन्मों तक साथ चली जाती हैं। ऐसे लोग बिना साधना के भी पूर्व संचित संपदा के आधार पर चमत्कारी आचरण प्रस्तुत करते देखे गए हैं।

❐ ❐

अतींद्रिय ज्ञान की प्राप्ति

अतींद्रिय ज्ञान (एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी सेन्सरी परसेप्शन) की प्राप्ति में यों मस्तिष्क के अचेतन भाग के अन्य केंद्र भी काम करते हैं, पर आज्ञाचक्र का उपयोग सबसे अधिक होता है। धूमिल स्थिति में तो दर्पण पर अपनी आकृति तक देखना संभव नहीं होता, फिर धूमिल आज्ञाचक्र क्या काम करेगा ? कैमरे के लेन्स पर धूलि जम रही हो, तो साफ फोटो कहाँ आता है ? आँखें दुखने आ जाएँ या पट्टी बाँध ली जाय, तो दृश्य कहाँ दिखाई देते हैं ? इसी प्रकार धूमिल आज्ञाचक्र अपनी क्षमता का प्रकटीकरण प्रसुप्त स्थिति में नहीं कर सकता। सक्षम बनाने के लिए उसे स्वच्छ एवं जाग्रत् बनाने की आवश्यकता होती है। इस विभाग को अध्यात्म की भाषा में तृतीय नेत्र कहा जाता है। उसमें दिव्य दृष्टि का अस्तित्व पाया जाता है, दिव्य दृष्टि का अर्थ है—वह देख पाना जो नेत्र गोलकों की सामर्थ्य से आगे की बात है।

प्रसिद्ध जादूगर गोगियापाशा और प्रो० सरकार नेत्रों से कड़ी पट्टी बँधवाकर घनी आबादी की भीड़ भरी सड़कों पर मोटर साइकिल दौड़ाने के अपने करतब दिखा चुके हैं। इन प्रदर्शनों से पहले विशेषज्ञों ने अनेक प्रकार से यह परीक्षा कर ली थी, कि इस स्थिति में आँखों से देख सकने की किसी प्रकार कोई गुंजाइश नहीं है। प्रदर्शनों के समय दुर्घटना घटित न होने देने के यों सरकारी प्रबंध भी थे, पर वैसा अवसर ही नहीं आया। प्रदर्शन पूरी सफलता के साथ संपन्न हुए और दर्शकों में से सभी को यह विश्वास करना पड़ा, कि बिना आँखों की सहायता के भी बहुत कुछ देखा जाना संभव हो सकता है।

इसी से मिलती-जुलती एक घटना अमेरिका की भी है। पोद्देशिया नामक महिला घोर अँधेरे में, आँखों में पट्टी बाँधकर दृश्य देखने और रंग पहचानने का दावा करती थी। उसकी परीक्षा बर्नार्ड कॉलेज, न्यूयार्क की वैज्ञानिक मंडली ने की। परीक्षा समिति के अध्यक्ष 'डॉ० रिचर्ड यूटस' ने घोषित किया हैं—'वस्तुतः महिला में वैसी ही क्षमता है, जैसा कि उसका कथन है।' 'तंत्र विद्या के विश्व-कोश' 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि ऑकल्ट' ग्रंथ में ऐसे ढेरों उदाहरणों का वर्णन है, जिनमें मनुष्य में पाई जाने वाली अतींद्रिय क्षमताओं का उल्लेख है। फ्रांसीसी नाविक फोंटान जन्मांध था, पर वह अपनी उँगलियों से छूकर सब कुछ उसी तरह जान लेता था, जैसा कि आँखों वाले नेत्रों से देखकर जानते हैं। फ्रांसीसी कवि और वैज्ञानिक 'जूल्स रोमेन्स' ने परोक्ष दृष्टि विज्ञान में गहरी दिलचस्पी ली थी और अपने शोध प्रयासों में सिद्ध किया था कि नेत्रों के द्वारा मस्तिष्क में दृश्य सूचना पहुँचाने वाले ज्ञान-तंतुओं के समान ही संवेदनावाहक धागे शरीर के अन्य अंगों में भी मौजूद रहते हैं। यदि उन्हें विकसित किया जा सके, तो दृष्टि प्रयोजन अन्य अवयवों की सहायता से भी पूरा किया जा सकता है।

चैकोस्लोविया के परामनोविज्ञान संस्थान के प्राध्यापक 'मैलिन रिज्ल' और लेनिनग्राड विश्वविद्यालय के प्राध्यापक 'वेलिलियेव' अपनी शोध-समीक्षा में उस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि, मनुष्य में अतींद्रिय क्षमता का अस्तित्व मौजूद है, किंतु वह क्यों विकसित होती है और किस प्रकार उसे बढ़ाया जा सकता है ? यह अभी भी रहस्य का विषय है।

गेविन मैक्सवेल ने दिव्य दृष्टि के अस्तित्व को खोजने में गहरी दिलचस्पी ली है और उन्होंने जाँच-पड़ताल के बाद यह पाया है कि बहुतों में सहज ही दृष्टि होती है। लगातार प्रयत्न और अभ्यास करने पर उसे बढ़ाया जा सकता है। कितने ही

बिना किसी अभ्यास के भी उस क्षमता से संपन्न पाए जाते हैं, किंतु वे अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने में प्रायः डरते रहते हैं। ढोंगी समझे जाने, किसी को बुरा लगने, सही न होने पर खिल्ली उड़ने, अपनी अनुभूति पर पूर्ण विश्वास न होने जैसे कारणों से भीतर से जो आभास मिलता है, उसे प्रकट नहीं कर पाते और छिपाए ही रहते हैं। यदि पूर्वाभासों के प्रकटीकरण की परंपरा चल पड़े, तो फिर प्रतीत होगा कि मनुष्यों में बुद्धिमत्ता की तरह अपरात्मानुभूति का अस्तित्व भी बड़ी मात्रा में मौजूद है। प्रयत्नपूर्वक विकसित करने पर तो उसे और भी अधिक सक्षम बनाया जा सकता है। अशिक्षितों को शिक्षित बनाकर, जिस प्रकार बुद्धि-वैभव बढ़ाया जाता है, उसी प्रकार यह भी संभव है कि जन साधारण में सामान्यतया और कुछ विशिष्टों में विशेषतया पाई जाने वाली दिव्य दृष्टि को समर्थ बनाना और उससे लाभ उठाना संभव हो सके।

गेविन मैक्सवेल ने अपने अनुसंधानों में एक अस्सी वर्षीय अंधे का वर्णन किया है, जिसने समुद्र में डूबी हुई एक मछुआरे की लाश का सही स्थान बताने और उसे बाहर लाने में सहायता की थी। उन्होंने पश्चिमी पठार के द्वीप समूहों के लोगों में यह क्षमता विशेष रूप से पाए जाने का उल्लेख किया है। शम्श फियारना द्वीप में एक मछुआ मछली पकड़ते समय गाँव के समीप की खाड़ी में डूब गया। उसकी लाश निकालने और विधिवत् दफनाने के लिए सारा गाँव उत्सुक था। सभी नावें कई दिन लगातार खाड़ी में चक्कर काटती रहीं, पर किसी काँटे में लाश फँसी नहीं। निराशा छाई हुई थी। तभी एक अस्सी वर्षीय अंधे कैलम मेकिनन ने कहा— आप लोग मुझे नाव में बिठाकर ले चलें और खाड़ी में घुमाते रहें। संभवतः मैं लाश की तलाश करा दूँगा। वैसा ही किया गया। सही जगह मिलने पर बुड्ढा चिल्लाया, काँटा

डालो, लाश ठीक नीचे है। वैसा ही किया गया। फलतः मृतक को बाहर निकाल लिया गया और उसे विधिवत् दफनाया गया।

यह दिव्य दृष्टि भौतिक क्षेत्र में अदृश्य को देखने और अविज्ञात को जानने में काम आती है और आध्यात्मिक जगत् में दूरदर्शिता एवं विवेकशीलता को विकसित करती है। ऐसे दिव्यदर्शी, तत्त्वदर्शी कहलाते हैं, उन्हें जो सूझता और दीखता है, वह बहुत ही उच्च स्तरीय होता है। पदार्थों में चेतना और प्राणियों में आत्मा को देख पाना, इसी तत्त्वदर्शी दृष्टि के लिए संभव है। ऋतंभरा प्रज्ञा के नाम से यही प्रख्यात है, गायत्री महामंत्र में इसी की आराधना है। इसकी उपलब्धि होने पर सर्वत्र अपनी ही आत्मा बिखरी हुई दीखती है और अन्यान्यों के सुख-दुःख अपने ही प्रतीत होते हैं। इन्हीं से आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर दर्शन का परम लक्ष्य प्राप्त होता है। दिव्यदर्शी भगवान् बुद्ध ने कहा था— 'जब करुणा के नेत्र खुलते हैं, तो मनुष्य अपने में दूसरों को और दूसरों में अपने को देखने लगता है। करुणा की दृष्टि से ही माया का उच्छेद होता है और उसके पार पूर्णता की परम ज्योति का दर्शन होता है।' इसी परम ज्योति को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है।

कई वर्ष पूर्व की बात है। मास्को टेलीविजन पर एक अत्यंत आश्चर्यजनक कार्यक्रम प्रसारित किया गया। निजनी तगिन की एक २२ वर्षीया तरुणी रोसा कुलेशोवा ने अपने दाहिने हाथ की तीसरी और चौथी उँगलियों से स्पर्श करके, अखबार का एक लेख पढ़ा और फोटो चित्रों को बिना किसी की मदद से देखकर पहचाना। इस कार्यक्रम को हजारों रूसियों और दूसरे देशवासियों ने देखा और बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया।

रोसा निजनी के अंध विद्यालय में अध्यापन का कार्य करती है। एक दिन जब वह पढ़ा रही थी, तब एकाएक उसने अनुभव किया कि, वह बिना आँखों की सहायता के उँगलियों के पोरों से

देख सकती है। उसने धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाया। स्पर्श से ही वह अंक पहचानने लगी। कुछ दिन में तो वह कागजों पर हुए रंग को भी केवल स्पर्श से जानने लगी। दिसंबर १९६२ को उसने सोवियत संघ, मनोवैज्ञानिक संघ की यूराल शाखा के सदस्यों के सामने प्रदर्शन किया। तुरंत प्रेस से आए अखबार को उँगलियों की मदद से पढ़कर सुना दिया। यही नहीं, अखबार पर जहाँ चित्र थे, उनके पोज और वह चित्र कैसे कपड़े पहने थे ? यह सब अत्यंत सूक्ष्म विभाजन तक उसने केवल स्पर्श से बता दिए, स्पर्श से वह किस प्रकार अक्षर, रंग या चित्रों को पहचान लेती है, उसका कोई निश्चित उत्तर रोसा नहीं दे सकी, किंतु उसने इतना अवश्य बताया कि, कोई भी वस्तु छूने से कुछ तरंग जैसी लाइनें मस्तिष्क पर दौड़ने लगती हैं और सब कुछ स्पष्ट होने लगता है।

वैज्ञानिक बहुत हैरान हुए, खारकोव विश्वविद्यालय के एक मनोविज्ञानशास्त्री ने कहा—'संभव है वस्तुओं से इन्फ्रारेड किरणें निकलती हों और उनके स्पंदन से पता चलता हो, इसलिए रोसा पर कुछ प्रयोग किए गए। पॉलिश किये हुए काँच के पार से वस्तुएँ दिखाई गईं। अब इन्फ्रारेड किरणों की संभावना को रोक दिया गया था, तो भी रोसा ने पहले की तरह ही सब कुछ बता दिया। यही नहीं, उसे एक लंबी नली के पार से रंग दिखाए, तब उसने नली के मुँह पर उँगली रखकर सब कुछ सही-सही बता दिया। वैज्ञानिक कोई कारण समझ न सके, अंत में रूसी अखबार 'इजवेस्तिया' ने स्वीकार किया, यह किसी दिव्य-दृष्टि का चमत्कार है।

टेलीविजन पर हुए कार्यक्रम को देखने के बाद खारकोव के एक डॉक्टर ओल्गा ब्लिजनोव ने अपनी पुत्री पर भी इस तरह का प्रयोग किया और देखा कि, रोसा कुलेशोवा की तरह नीले, काले, हरे, लाल सब रंगों को केवल स्पर्श से जान लेती है। उसका भी परीक्षण किया गया। लेना ब्लिजनोव के सामने चौकोर

कागजों का पूरा बंडल रखा गया और उसके नीचे एक कागज में कुछ लिखकर छुपा दिया गया। आश्चर्य कि उसने बंडल के ऊपर वाले कागज को छूकर यह बता दिया कि सबसे नीचे वाले कागज में क्या लिखा हुआ है ? इतना ही नहीं, वह दो-ढाई इंच दूर उँगलियाँ रखकर भी फोटो, चित्र, रंग और अक्षर पहचान लेती है, जबकि उसकी आँखों में मजबूत पट्‌टी बँधी होती है।

प्रोफेसर अलेक्जांदेर स्मिर्नोव ने इस विद्या का गहन अध्ययन किया। उन्होंने ऐसी क्षमता के कुछ लड़के भी खोज निकाले, पर इस रहस्य का सही पता न लगा सके। इन चर्चाओं को न्यूयार्क में बार्नार्ड कॉलेज के प्रोफेसर डॉ० रिचर्ड पी० यूज ने भी सुना, तो उन्होंने बताया कि, १९३६ में कैंटकी के हाईस्कूल में पेट्रीशिया आइन्सवर्स नाम की एक लड़की भी इस तरह की दिव्य-दृष्टि रखती है। अब तक वह स्त्री कई बच्चों की माँ हो चुकी थी। इसलिए डॉ० यूज ने कॉलेज के लड़कों पर प्रयोग दोहराए और बाद में उन्होंने बताया कि १३५ विद्यार्थियों में से १५ प्रतिशत छात्रों में इस तरह की क्षमता पाई गई, जो अभ्यास के द्वारा अपनी दिव्य-दृष्टि बढ़ा सकते हैं। इस घोषणा से सिद्ध है कि आँखों से ही सब कुछ नहीं देखा जाता। उसके अतिरिक्त अंगों में भी देखने-समझने की क्षमता मौजूद है। मस्तिष्क, नेत्र गोलकों का फोटोग्राफी कैमरे जैसा प्रयोग करता है और पदार्थों के जो चित्र आँखों की पुतलियों के लेन्स से खींचता है, वे मस्तिष्क में जमा होते हैं। इनकी प्रतिक्रिया के आधार पर मस्तिष्क के ज्ञानतंतु जो निष्कर्ष निकालते हैं, उसी का नाम 'दर्शन' है। आँख इसके लिए सबसे उपयुक्त माध्यम है। मस्तिष्क के रूप-दर्शन केंद्र के साथ नेत्र गोलकों के ज्ञान-तंतुओं का सीधा और समीपवर्ती संबंध है। इसलिए आमतौर से हम नेत्रों से ही देखने का काम लेते हैं और मस्तिष्क उन्हीं के आधार पर अपनी निरीक्षण क्रिया को गतिशील देखता है।

पर ऐसा नहीं समझना चाहिए कि दृष्टि शक्ति केवल नेत्रों तक ही सीमित है। अन्य अंगों के मस्तिष्क के साथ जुड़े हुए ज्ञान तंतुओं को विकसित करके भी मस्तिष्क बहुत हद तक उस प्रयोजन की पूर्ति कर सकता है। समस्त विश्व का हर पदार्थ अपने साथ ताप और प्रकाश की विद्युत् किरणें सँजोये हुए है। वे कंपन लहरियों के साथ इस निखिल विश्व में अपना प्रवाह फैलाती हैं। ईथर तत्त्व के द्वारा वे दूर-दूर तक जा पहुँचती हैं और यदि उन्हें ठीक तरह से पकड़ा जा सके तो जो दृश्य बहुत दूर पर अवस्थित है, जो घटनाएँ सुदूर क्षेत्रों में घटित हो रही हैं, उन्हें निकटवर्ती वस्तुओं की तरह देखा जा सकता है। इन दृश्य किरणों को पकड़ने के लिए नेत्र उपयुक्त हैं। समीपवर्ती दृश्य वही देखते हैं और दूरवर्ती दृंश्य देखने के लिए तृतीय नेत्र (भ्रूमध्य में अवस्थित आज्ञाचक्र) को प्रयुक्त किया जा सकता है। इतने पर भी यह नहीं समझ लेना चाहिए कि रूप तत्त्व का संबंध नेत्रों से ही है। अग्नि तत्त्व की प्रधानता से 'रूप' कंपन उत्पन्न होते हैं। शरीर में अग्नि तत्त्व का प्रतिनिधित्व नेत्र करते हैं, पर ऐसा नहीं मानना चाहिए कि अग्नि तत्त्व अन्यत्र शरीर के अन्य अंगों में नहीं है। समस्त शरीर पंचतत्त्वों के गुंफन से बना है। यदि किसी अन्य अंग का अग्नि तत्त्व अनायास ही विकसित हो जायेगा या साधनात्मक प्रयत्नों द्वारा विकसित कर लिया जाए, तो नेत्रों की बहुत आवश्यकता उनके माध्यम से भी पूरी हो सकती है। इसी प्रकार अन्य ज्ञानेंद्रियों के कार्य एक सीमा तक दूसरे अंग कर सकते हैं। स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किए गए पौहारी बाबा प्रत्यक्षतः वायु ही ग्रहण करते थे। अन्न, जल सेवन नहीं करते थे। पर शरीर के अन्य अंगों द्वारा अदृश्य जगत् से उन्हें सूक्ष्म आहार बराबर मिलता रहता था। इसके बिना किसी के लिए भी जीवन धारण किए रहना असंभव है।

➢ वेधक दृष्टि भी असंभव नहीं

मानवी शरीर की विलक्षणताओं की चर्चा करते हुए उन प्रामाणिक घटनाओं का उल्लेख अक्सर किया जाता रहा है, जिनकी यथार्थता सुविज्ञ लोगों ने पूरी जाँच-पड़ताल के बाद घोषित की है। मनुष्य शरीर में यांत्रिक बिजली की आश्चर्यजनक मात्रा हो सकती है, इसके कितने ही उदाहरण सर्वविदित हैं। कोलोराडो प्रांत के लेडीवली नगर में के० डब्ल्यू० पी० जोन्स नाम का एक ऐसा व्यक्ति हुआ है, जो जमीन पर चलकर यह बता देता था कि, जिस भूमि पर वह चल रहा है, उसके बीच किस धातु की, कितनी गहरी तथा कितनी बड़ी खदान है। उसे जमीन में दबी भिन्न धातुओं का प्रभाव अपने शरीर पर विभिन्न प्रकार के स्पंदनों से होता था। अनुभव ने उसे यह सिखा दिया था कि, किस धातु का स्पंदन कैसा होता है ? अपनी इस विशेषता का उसने भरपूर लाभ उठाया। कइयों को खदानें बताकर, उनसे हिस्सा लिया और कुछ खदानें उसने अपने धन से खरीदीं और चलाईं। अमेरिका का वह बहुत धनसंपन्न व्यक्ति इसी अपनी विशेषता के कारण बना था।

आयरलैंड के प्रो० वैरेट इस बात के लिए प्रख्यात थे कि वे भूमिगत जल-स्रोतों तथा धातु खदानों का पता अपनी अंतःचेतना से देखकर बता देते थे। इस विशिष्टता से उन्होंने अपने देशवासियों को बहुत लाभ पहुँचाया था। आस्ट्रेलिया का एक किसान भी पिछली शताब्दी में इस विद्या के लिए प्रसिद्धि पा चुका है, वह दो शंकु वाली टहनी हाथ में लेकर खेतों में घूमता-फिरता था और जहाँ उसे जल-स्रोत दिखाई पड़ता था, वहाँ रुक जाता था। उस स्थान पर खोदे गये कुओं में प्रायः पानी निकल ही आता था। भारत के राजस्थान प्रांत में एक पानी वाले महाराज, जिन्हें माधवानंद जी कहते थे, अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर, कितने ही सफल कुएँ बनवा चुके थे।

भूमिगत अदृश्य वस्तुओं को देख सकने की विद्या को 'रेब्डोमेन्सी' कहते हैं। इस विज्ञान की परिधि में जमीन में दबे खनिज, रसायन, जल, तेल आदि सभी वस्तुओं को जाना जा सकता है, किंतु यदि केवल जल तलाश तक ही वह सीमित हो, तो उसे 'वाटर डाउनिंग' कहेंगे।

आयरलैंड के विकलो पहाड़ी क्षेत्र में दूर-दूर तक कहीं पानी का नामोनिशान नहीं था। जमीन कड़ी, पथरीली थी। प्रो० वेनेट ने खदान विशेषज्ञों के सामने अपना प्रयोग किया। वे कई घंटे उस क्षेत्र में घूमे। अंततः वे एक स्थान पर रुके और कहा—केवल १४ फुट गहराई पर यहाँ एक अच्छा जलस्रोत है। खुदाई आरंभ हुई और पूर्व कथन बिल्कुल सच निकला। १५ फुट जमीन खोदने पर पानी की एक जोरदार धारा वहाँ से उबल पड़ी।

इन सबके पीछे उसी प्राण शक्ति का आधार सन्निहित है। बिजली एक ही होती है, पर हीटर में वही गरमी पैदा करने का कार्य करती है, तो रेफ्रीजरेटर में ठंडक का। दोनों तथ्य एक-दूसरे से विपरीत हैं, किंतु एक ही शक्ति के उपादान भी। मानव शरीर में विद्यमान प्राण भी एक ऐसी ही विद्युत् है, जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य किए जा सकने नितांत संभव हैं।

मानवी शरीर के शोध इतिहास में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख है, जिनसे यह सिद्ध होता है कि किन्हीं-किन्हीं शरीरों में इतनी अधिक बिजली होती है कि उसे दूसरे लोग भी आसानी से अनुभव कर सकें। यों हमारा नाड़ी संस्थान पूर्णतया विद्युत् धारा से ही संचालित होता है। मस्तिष्क को जादुई बिजलीघर कह सकते हैं, जहाँ से शरीर के समस्त अंग-प्रत्यंगों की गतिविधियों का नियंत्रण एवं संचालन होता है, पर यह बिजली 'जीव विद्युत्' वर्ग की होती है और इस तरह अनुभव में नहीं आती, जैसी कि बत्ती जलाने या मशीनें चलाने वाली बिजली। शरीर में काम करने वाली गर्मी से विभिन्न अवयवों की सक्रियता रहती है और वे

अपना-अपना काम करते हैं। यह कायिक ऊष्मा वस्तुतः एक विशेष प्रकार की बिजली ही है। इसे मानवी विद्युत् कह सकते हैं। इसी का सम्मिलित स्वरूप ही सूक्ष्म शरीर कहलाता है।

भारतीय दर्शन ने आत्मा की अमरता, अलौकिक जगत् की विभूतियों का चित्रण, जीवन लक्ष्य प्राप्ति की प्रेरणाएँ—इस तत्त्व दर्शन की अनुभूति के बाद ही दी हैं। इसीलिए हमारे धर्म की वैज्ञानिकता सिद्ध होती है।

➢ प्राण के नियंत्रण के चमत्कार

भारतीय योगियों द्वारा परकाया प्रवेश को विज्ञान के तर्कवादी व्यक्ति अतिरंजित कल्पना कहकर टाल देते हैं। वस्तुतः मनुष्य के स्थूल शरीर की अपेक्षा उसके प्राण शरीर की महत्ता असंख्य गुनी अधिक है। जीवन के सत्य, शरीर ब्रह्मांड की अंतर्वर्ती रचना, विज्ञान और क्रिया का ज्ञान जिस शरीर और माध्यम द्वारा संभव है, वह प्राण शरीर ही है। स्थूल शरीर की अपेक्षा प्राण शरीर कहीं अधिक सशक्त और आश्चर्यजनक काम कर सकने की सामर्थ्य से ओत-प्रोत होता है।

प्रशांत महासागर में समाओ द्वीप के निकट एक जीव पाया जाता है; उसे पैलोलो कहते हैं। यह जल में छिपी चट्‌टानों में घर बनाकर रहता है। वर्ष में दो बार अक्टूबर तथा नवंबर के उन दिनों में, जब चंद्रमा आधा होता है और ज्वार अपनी छोटी अवस्था में होता है, यह बाहर निकलकर पानी की सतह पर आता है और सतह पर आकर अंडे देकर फिर वापस चला जाता है।

अंडा देने आने और वापस चले जाने में कोई विचित्र बात नहीं है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि पैलोलो जब अपने घर से चलता है, तो अपना आधे से अधिक शरीर वह घर में ही सुरक्षित छोड़ आता है। अंडा देने और तैरने के लिए जितना शरीर

आवश्यक होता है, उतने से ही वह अपना सतह में आने का अभिप्राय पूरा कर जाता है। इस बीच उसका शरीर मृत ढेले मिट्‌टी की तरह निष्क्रिय पड़ा रहता है। घर लौटकर पैलोलो फिर से अपने उस छोड़े हुए अंग को फिट कर लेता है। उसके बाद उस शरीर में भी रक्त संचार, प्राण संचार की गतिविधियाँ प्रारंभ हो जाती हैं। यह एक उदाहरण है, जो यह बताता है कि मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति शरीर के बिना भी चला सकता है। शरीर से तो उसका संबंध कुछ वर्षों का, अधिक-से-अधिक एक शताब्दी का ही होता है, पर प्राण-शरीर उसकी जीवन धारण करने की प्रक्रिया से लेकर मुक्ति पर्यंत साथ-साथ रहता है।

बालक गर्भ में आता है, तब वह किसी प्रकार की श्वास नहीं लेता। फिर से उसके शरीर में ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा पहुँचती और शरीर के विकास की गति चलती रहती है। उस समय बच्चे की नाभि का संबंध माँ की नाभि से बना रहता है। नाभि सूर्य का प्रतीक है। प्राणायाम द्वारा वस्तुतः सूर्य चक्र का ही जागरण किया जाता है, जिससे आत्मा अपना संबंध सीधे सूर्य से जोड़कर प्राणाग्नि का विकास करती रहती है। प्रारंभ प्राणायाम की क्रियाओं से होता है और चरम विकास ध्यान, धारणा और समाधि अवस्था में। मुक्ति और कुछ नहीं, प्राणमय शरीर को सूर्य के वृहद् प्राण में घुलाकर स्वयं आद्य शक्ति के रूप में परिणत हो जाना होता है। जिस प्रकार नदी से एक लोटा जल लेने से लोटे के जल की सत्ता अलग हो जाती है, पर नदी में उँड़ेल देने के बाद वह जल फिर नदी हो जाता है, वैसी ही गति प्राणों की भी होती है।

शरीर के न रहने पर भी प्राणों में गति बनी रहती है। प्रसिद्ध तिब्बती योगी, लामा श्री टी० लाबसाँग रंपा ने अपनी पुस्तक "यू फारएवर" (आप अमर हैं) पुस्तक में मनुष्य का तेजोवलय (चतुर्थ अध्यात्म) में एक घटना का वर्णन करते हुए

लिखा है कि—"फ्रांस क्रांति के समय एक देशद्रोही का सिर काट दिया गया। धड़ से शीश अलग हो जाने पर भी, उसके मुँह से स्फुट बुदबुदाहट की क्रिया होती रही। ऐसा जान पड़ा कि, वह कुछ कहना चाहता है। इस घटना को फ्रांसीसी शासन ने सरकारी पुस्तकों में रिकार्ड करवाया, जो अभी तक विद्यमान है।"

कर्नल टाउन सेंड ने प्राणायाम के अभ्यास से प्राणमय शरीर के नियंत्रण में सफलता प्राप्त की थी। सुप्रसिद्ध अमेरिकी अणु वैज्ञानिक श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट की भाँति उन्होंने भी प्राण सत्ता के अद्‌भुत प्रयोगों का प्रदर्शन किया था। एक बार सैकड़ों वैज्ञानिकों व साहित्यकारों से खचाखच भरे हाल में उन्होंने प्रदर्शन किया। स्वयं एक स्थान पर बैठ गये। ब्लैकबोर्ड के साथ खड़िया बाँध दी गयी। इसके बाद उन्होंने अपना प्राण शरीर से बाहर निकालकर अदृश्य शरीर से ब्लैकबोर्ड पर बोले हुए अक्षर लिखे, सवाल हल किए। बीच-बीच में वे अपने शरीर में आ जाते और वस्तु स्थिति भी समझाते जाते। इस प्रदर्शन ने लोगों को यह सोचने के लिए विवश किया कि मनुष्य शरीर जितना दिखाई देता है, वहीं तक सीमित नहीं, वरन् वह जो अदृश्य है, इस शरीर से कहीं अधिक उपयोगी व मार्मिक है।

डॉ० वानडेन फ्रेंक ने इस संबंध में व्यापक खोज की थी और यह पाया था कि—सिर के उस स्थान का, जहाँ हिंदू लोग चोटी रखते हैं, प्राण शरीर से संबंध रखता है, यहीं से हृदय और रक्त-विसरण की क्रियाएँ भी संपन्न होती हैं। उन्होंने शरीर के विकास में, इन्हीं खोजों के आधार पर, मानसिक क्रियाओं का बहुत अधिक महत्त्व माना था।

वायु मिश्रित ऑक्सीजन, प्राण, अग्नि, स्फुलिंग, ये सब एक तत्त्व के नाम हैं। इस पर नियंत्रण करके योगीजन शरीर न रहने पर भी हजारों वर्ष तक संसार में बने रहते हैं। उसे न जानने वाले संसारी लोग अपने इस महत्त्वपूर्ण शरीर को भी उसी तरह

नष्ट करते रहते हैं, जिस तरह इंद्रियों द्वारा शरीर की क्षमताओं को। प्राण शरीर का विकास किए बिना जीवन के रहस्यों में गति असंभव है; आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर दर्शन नामुमकिन है।

➢ गुरुत्वाकर्षण से मुक्त प्राण चेतना

योग सिद्धियों में वर्णित आकाश गमन जैसी सिद्धियों की चर्चा को दंत कथा नहीं मान लिया जाना चाहिए। मानव शरीर में भौतिक उपकरण में प्रयुक्त होने वाले सारे आधार बीज रूप में मौजूद हैं। उन शक्ति बीजों को विकसित करके शरीर के कणों को इतना हल्का बनाया जा सकता है, जिन पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव न पड़े और मनुष्य का आकाश में उड़ सकना संभव हो सके। प्रयोग की बात आगे की है, पर सिद्धांत रूप में उसे अब असंभव नहीं कहा जा सकता। मनोबल की प्रचंड क्षमता का, शारीरिक विद्युत् का, मस्तिष्कीय कंप्यूटर का, कायिक रेडियो सक्रियता का वैज्ञानिकों ने जो परिचय पाया है, उससे वे आश्चर्यचकित रह गये हैं।

पानी की सतह के ऊपर एक अदृश्य झिल्ली होती है, जिसे सतह की तनाव शक्ति 'सरफेस टेन्शन' भी कहते हैं। यह परत कई बार घनी भी होती है। उसके ऊपर कोई हल्की चीज इस तरह धीरे से तैराई जाय कि उस झिल्ली को आघात न लगे, तो वह पानी पर तैरती रहेगी। हजामत बनाने का ब्लेड यदि होशियारी के साथ इस परत के ऊपर छोड़ दिया जाय, तो वह तैरता रहेगा, डूबेगा नहीं।

मृत सागर 'डेड सी' में क्षार आदि बहुत हैं। उसका पानी भारी है, इसलिए उसमें कोई मनुष्य डूबना चाहे तो डूब नहीं सकेगा, कारण कि मनुष्य शरीर के कण उस पानी की तुलना में हल्के हैं। हलकी चीज भारी द्रव में नहीं डूब सकती।

जल कणों से जो भी चीज हल्की होगी, आसानी से तैरने लगेगी। लकड़ी हल्की होती है। हवा भरे गुब्बारे, रबड़ के ट्यूब हल्के होते हैं और वे पानी पर तैरते हैं। शरीरगत कणों के भार में न्यूनता

करना और उन्हें जल कण की तुलना में हल्के बना लेना योग साधनाओं द्वारा संभव है। स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर की सत्ता यदि प्रखर हो उठे, तो उतना हल्कापन देह में उत्पन्न किया जा सकता है कि वह जल पर बिना डूबे चल सके एवं आकाश में बिना गिरे उड़ सके। प्राणों के नियंत्रण द्वारा यौगिक जगत् में भी वैसा ही सिद्धांत कार्य करता है, जिसमें न केवल सूक्ष्म शरीर को स्थूल से पृथक् कर परकाया प्रवेश किया जा सके, अपितु सदेह भी उड़ा जा सकता है। हनुमान् जी ने प्राणायाम की शक्ति से ही समुद्र लाँघा और हवा में उड़कर संजीवनी बूटी लाये थे।

इटली के एक पादरी जोसेफ ने अपने समय में हवा में उड़ सकने की क्षमता प्रदर्शित करके अनोखी ख्याति पाई थी। इस सिद्धि की चर्चा तब तो देश भर में फैल गई, जबकि उसने मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व एक डॉक्टर को भी अपने साथ हवा में उड़ाकर दिखा दिया।

जोसेफ की मृत्यु १६६३ में हुई। जब वह मरणासन्न था, तो प्रसिद्ध चिकित्सक फ्रांसेस्को थिरयोली को चिकित्सा के लिए बुलाया गया। डॉक्टर ने अपने संस्मरण में लिखा है—'मैं देखभाल कर ही रहा था कि जोसेफ ने मेरा हाथ पकड़ा और हवा में तैरने लगा, उससे जकड़ा हुआ मैं भी उड़ रहा था। इसके बाद वह मुझे भी उड़ाते हुए फ्रांस के गिरजे तक ले गया और वहीं बैठकर प्रार्थना करने लगा। मुझसे कहा, आपके इलाज की जरूरत नहीं रही। मुझे भगवान् ने बुलाया है, सो मैं जल्दी ही परलोक जा रहा हूँ।' डॉक्टर सन्न रह गया और बिना इलाज किये ही वापस लौट गया। दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गयी।

इटली के सरकारी कागजों में जोसेफ के हवा में तैरने के कितने ही प्रसंग हैं, जो पुलिस तथा दूसरे अफसरों ने तथ्य का पता लगाने के लिए जाँच-पड़ताल के संबंध में संग्रह किये थे। किंवदंतियों से लेकर प्रत्यक्षदर्शियों तक के ऐसे अनेकानेक प्रसंग इटली की

जनता में प्रचलित हैं, जिनसे पता चलता है कि पादरी ऊँची रखी हुई ईसा की मूर्तियों तक उछलकर जा पहुँचता था, और ऐसे ही कुछ देर अधर में लटका रहता था। लोग उसे अलौकिक क्षमताओं से संपन्न सिद्ध पुरुष मानने लगे थे।

पादरी जोसेफ का पिता इटली के फेलिक्स डेला नामक गाँव में रहता था और बढ़ई का काम करता था। गरीबी और बेकारी से दु:खी होकर वह अपनी गर्भववती पत्नी को लेकर कहीं गुजारे का आसरा ढूँढ़ने के लिए चल पड़ा। सन् १६०३ की बात है, रास्ते में ही इस लड़के का जन्म हो गया। वह बहुत ही दुर्बल हड्डियों का ढाँचा मात्र था। जन्म से ही बीमार रहने लगा और थोड़े दिनों में ही पेट की भयंकर व्यथा से ग्रसित हो गया। इलाज के लिए पैसा न होने से बाप ने एक साधु की शरण ली। साधु ने कहा—'इसका शरीर मर चुका, केवल आत्मा ही धरती पर बाकी है।' इतने पर भी उसने कहा, वह बचा लिया जायेगा और पादरी होकर जीयेगा। सचमुच ही वह बच गया और बचपन से ही साधुओं जैसा पूजा-पाठ का जीवनयापन करने लगा। उसकी उपासना चलती रही और चमत्कारी ख्याति बढ़ी। उसकी विशेषताओं में प्रार्थना के अवसरों पर हवा में तैरने लगने की प्रसिद्धि सर्वत्र फैली हुई थी।

लार्ड अडारे ने अपनी आँखों देखा ऐसा विवरण 'रिपोर्ट ऑफ दि डाइलेक्टिकल सोसाइटी ऑन स्प्रिच्युलिज्म' में प्रकाशित कराया था, जिसके अनुसार एक व्यक्ति को उन्होंने हवा में पक्षी की तरह उड़ते और तैरते देखा था। उनके इस विवरण की यथार्थता के लिए 'दी रॉयल एस्ट्रोनोमिकल सोसाइटी' के अध्यक्ष की साक्षी भी जोड़ी गई थी।

इस विवरण में होम नामक एक ऐसे अद्भुत व्यक्ति का उल्लेख है, जिसे कितनी ही तरह की चमत्कारी सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वह हवा में उड़ सकता था, जलते हुए अंगारे बहुत देर तक हाथों पर रखे रहता था।

इन सिद्धियों की चर्चा हुई तो बहुतों ने अविश्वास किया और इसे अफवाह फैलाकर धोखाधड़ी करने की संज्ञा दी। फलतः प्रख्यात और प्रामाणिक विज्ञानवेत्ता सर विलियम क्रुक्स की अध्यक्षता में एक शोध समिति इसके परीक्षण के लिए बनाई गयी। समिति इतना ही बताने में समर्थ हुई कि होम के बारे में जो कहा गया है, वह सही है। उसमें कोई चालाकी नहीं है, किंतु यह बता सकना कठिन है कि यह सब होता कैसे है ? ब्रिटिश सोसाइटी फार साइकिक रिसर्च के प्रतिनिधि एफ० डब्ल्यू० मेयर्स ने इस संबंध में भेंटवार्ता की। प्रो० क्रुक्स ने अपने परीक्षण, अनुभव और निष्कर्ष का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनाया और कहा— 'चालाकी जैसी कोई बात इसमें नहीं है। अस्तु, इस प्रकार की घटनाओं को विज्ञान की नई शोध का विषय माना जाना चाहिए और उन्हें अविश्वस्त न मानकर नये सिरे से खोज का प्रबंध करना चाहिए।' क्रुक्स ने अपने परीक्षण के समय होम में ऐसी विलक्षण शक्ति भी पाई कि वह अपने प्रभाव से, दूर रहते हुए भी, बिना छुए वस्तुओं को इधर से उधर हटा सकता था और ऐसी वस्तुएँ प्रस्तुत कर सकता था, जो वहाँ पहले से कहीं भी नहीं थीं।

अगस्त १९६२ की अंतरिक्ष उड़ान में वोस्तोक—३ यान की यात्रा करने वाले निकोलायेव ने अंतरिक्ष की स्थिति का कुछ विवरण सुनाते हुए कहा था—अंतरिक्ष में फर्श, जमीन, दीवार आदि छूकर चलने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है। खाली पोल में आदमी सहज ही चल सकता है। यान की दीवार को उँगली से छूकर एक छोटा धक्का देना काफी है। इतने भर में चलने की गति उत्पन्न हो जायेगी। फिर मजे में चलते रहिये, हाथ और पैरों की सहायता से किसी भी दिशा में बढ़ा-चला जा सकता है। चल ही नहीं—वहाँ पानी की तरह तैर भी सकते हैं। जिस तरह तैराक पानी को हाथ-पैरों का धक्का देकर अपनी गति बढ़ाता है, अंतरिक्ष के शून्य में भी उसी तरह तैरा जा सकता है।

गुरुत्वाकर्षण की परिधि से बाहर जाकर स्थूल शरीर का अंतरिक्ष की पोल में कितनी ही दूर तक चलना, दौड़ना, तैरना संभव है। उसमें आरंभ में एक छोटे झटके की और पीछे संकल्प शक्ति के आधार पर हाथ-पैरों की थोड़ी हरकत करने भर की जरूरत पड़ेगी। इस स्थिति को प्राप्त कर लेना अब अधिक कष्टसाध्य नहीं रहा। सिद्धांततः तो वह स्वीकार ही कर लिया गया है और अंतरिक्ष में तथा धरती पर भारहीनता की स्थिति में मनुष्य का आकाश-गमन प्रत्यक्ष करके देख लिया गया है।

गुरूत्वाकर्षण से रहित कमरे पृथ्वी पर बनाए गए हैं। भारहीनता की स्थिति का अभ्यास कराने के लिए अंतरिक्ष यात्रियों को उन्हीं कमरों में रखकर उस तरह की स्थिति का अनुभव कराया जाता है। अस्तु, अब वह भी आवश्यक नहीं रहा कि गुरुत्वाकर्षण की परिधि में ऊपर उठने के बाद ही आकाशगमन किया जा सके। पृथ्वी के किसी कमरे में विज्ञान ने इस तरह का वातावरण उत्पन्न करके यह सिद्ध कर दिया है कि गुरुत्वाकर्षण से रहित अंतरिक्ष की स्थिति गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के भीतर भी पैदा की जा सकती है।

न्यूट्रिनों, फोटोन व ग्रेविटोन परमाणु कणों में ग्रैविटेशन अर्थात् गुरुत्वाकर्षण बल कार्य नहीं करता—इसे सर जॉन एक्लिस (नोबुल पुरस्कार विजेता १९३३) तथा एड्रियन डाव ने अनेक खोजों से सिद्ध कर दिखाया है। यह कण प्रकाश जैसी सत्ता के ही अनुकण हैं। प्राण के अनुकणों में भी ऐसी क्षमता होती है, जो स्थूल कणों को भी गुरुत्वाकर्षण से मुक्त कर सकती है, उस स्थिति में आकाश-गमन की सिद्धि को असत्य नहीं कहा जा सकता है।

ये साधनाएँ यद्यपि कठिन होती हैं, पर असाधारण मनस्वी लोग इन्हें संपन्न कर सकते हैं। सच पूछा जाय तो प्राण साधना से इस शक्ति का भी स्वतः विकास होता चलता है।

❐ ❐

मानवी विद्युत्—अति प्रचंड शक्ति

➢ वातावरण प्रभावित करती वैज्ञानिक घटनाएँ

आग जिस कमरे में जलती है, वह पूरा का पूरा गरम हो जाता है। आग रहती तो ईंधन की सीमा में ही है, पर उसकी गर्मी और रोशनी दूर-दूर तक फैलती है। सूरज बहुत दूर होते हुए भी धरती तक अपना प्रकाश और ताप पहुँचाता है। बादलों की गर्जना दूर-दूर तक सुनाई पड़ती है। प्राणवान् व्यक्ति अपने प्रचंड व्यक्तित्व का प्रभाव सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचाते हैं और व्यक्तित्वों को ही नहीं, परिस्थितियों को भी बदलते हैं। वातावरण उनसे प्रभावित होता है। यह प्रभाव उत्पन्न करने वाली क्षमता प्राण-शक्ति ही है, भले ही वह किसी भी रूप में काम कर रही हो। वह देव और दैत्य, दोनों स्तर की हो सकती है। उसके अनुचित प्रयोग से वैसा ही विनाश भी होता है जैसे कि उचित प्रक्रिया से सत्परिणाम उत्पन्न होते हैं। दैवी, आसुरी शक्तियों के बीच संघर्ष होते रहने के सूक्ष्म कारणों में यह प्राण-प्रक्रिया का टकराव ही मुख्य कारण होता है।

ताप का मोटा नियम यह है कि अधिक ताप अपने संस्पर्श से आने वाले न्यून ताप उपकरण की ओर दौड़ जाता है। एक गरम-दूसरा ठंडा लोहखंड सटाकर रखे जायें, तो ठंडा गरम होने लगेगा, गरम ठंडा। वे परस्पर अपने शीत-ताप का आदान-प्रदान करेंगे और समान स्थिति में पहुँचने का प्रयत्न करेंगे।

बिजली की भी यही गति है। प्रवाह वाले तार को स्पर्श करते ही सारे संबद्ध क्षेत्र में बिजली दौड़ जायेगी। उसकी सामर्थ्य उस क्षेत्र में बँटती जायेगी। प्राण-विद्युत् का प्रभाव भी शीत-ताप के सान्निध्य जैसा ही होता है। प्राणवान् व्यक्ति दुर्बल प्राणों को अपना

बल ही नहीं, स्तर भी प्रदान करते हैं। ऋषियों के आश्रमों में सिंह और गाय के प्रेमपूर्वक निवास करने का तथ्य इसीलिए देखा जाता था कि प्राणवान् अपनी सद्भावना से उन पशुओं को भी प्रभावित कर देते थे। बिजली लोहे-सोने में, संत-कसाई में कोई भेद नहीं करती, वह सब पर अपना प्रभाव समान दिखाती है। जो भी उससे जैसा भी काम लेना चाहे वैसा करने में उसकी सहायता करती है, पर मानव शरीर में संव्याप्त विद्युत् की स्थिति भिन्न है। उसमें चेतना और संवेदना के दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। वह समस्त शरीर पर शासन करती है, मस्तिष्क उसका केंद्र संस्थान है। इतने पर भी उसे शरीर-शक्ति नहीं कह सकते। बल्व में जलने वाली बिजली उसी में से उत्पन्न नहीं होती, वरन् अन्यत्र से आती है, वहाँ तो वह चमकती भर है। मानव शरीर में पाई जाने वाली बिजली वस्तुतः चेतनात्मक है। उसे प्राण-प्रतिमा कहा गया है। वह शक्ति ही नहीं संवेदना भी है। विचारशीलता उसका विशेष गुण है। वह नैतिक और अनैतिक तथ्यों को अनुभव करती है और उस आधार पर भौतिक बिजली की तरह समस्वर नहीं रहती, वरन् अपना प्रवाह औचित्य के पक्ष में और अनौचित्य के विरोध में प्रस्तुत करती है।

इतनी छोटी-सी खोपड़ी में इतना बड़ा कारखाना किस प्रकार संजोया जमाया हुआ है ? इसे देखकर बनाने वाले की कारीगरी पर चकित रह जाना पड़ता है। यदि इतना साधन-संपन्न इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क बनाकर खड़ा करना हो, तो संसार भर के समस्त विद्युत् उपकरणों के लिए बनाए गए कारखानों जितनी जगह घेरनी पड़ेगी।

निःसंदेह मनुष्य एक जीता-जागता बिजलीघर है, किंतु झटका मारने वाली बत्ती, जलाने वाली सामान्य बिजली की तुलना उससे नहीं हो सकती। जड़ की तुलना में चेतन की जितनी

श्रेष्ठता है उतना ही भौतिक और जीवन विद्युत् में अंतर है। प्राण विद्युत् असंख्य गुनी परिष्कृत और संवेदनशील है।

जीव भौतिकी के नोबल पुरस्कार प्राप्त विज्ञानी हाजकिन, हक्सले और एकल्स ने मानवी ज्ञान तंतुओं में काम करने वाले विद्युत् आवेग (इंपल्स) की खोज की है। इनके प्रतिपादनों के अनुसार ज्ञान तंतु एक प्रकार के विद्युत् संवाही तार हैं, जिनमें निरंतर बिजली दौड़ती रहती है। पूरे शरीर से इन धागों को समेटकर एक लाइन में रखा जाय तो उनकी लंबाई एक लाख मील से भी अधिक बैठेगी। विचारणीय है कि इतने बड़े तंत्र को विभिन्न दिशाओं में गतिशील रखने वाले यंत्र को कितनी अधिक बिजली की आवश्यकता पड़ेगी।

शरीर के एक अवयव, मस्तिष्क का स्वतंत्र रूप से विश्लेषण करें, तो उसमें लगभग दस अरब न्यूरान (नस-कोष्ठ) हैं। उनमें से हर एक का संपर्क लगभग पच्चीस हजार अन्य नस-कोष्ठों के साथ रहता है।

मानव शरीर के इर्द-गिर्द छाए रहने वाले प्रभा मंडल के संबंध में परामनोविज्ञानी महिला एलीन गैरेट की पुस्तक 'अवेयरनेस' में अनेकों शोध विवरण छपे हैं, जिसमें उन्होंने शरीर के इर्द-गिर्द एक विद्युतीय कुहरे का चित्रांकन किया है। वे इस कुहरे के रंगों एवं उभारों में होते रहने वाले परिवर्तनों को विचारों के उतार-चढ़ाव का परिणाम मानती हैं। इस प्रभा मंडल के चित्र सोवियत विज्ञानी 'कीरलिएन' ने भी उतारे हैं और उनमें परिवर्तन होते रहने की बात कही है। इन प्रभा परिवर्तनों को मात्र विचारों का ही नहीं, शारीरिक स्वास्थ्य का प्रतीक भी माना गया और उसके आधार पर शरीर के अंतराल में छिपे हुए रोगों के कारण भी परखे गये हैं। इस प्रकार के परीक्षणों में मास्को मेडीकल इन्स्टीट्यूट के अध्यक्ष पावलोव ने विशेष ख्याति प्राप्त की है और

उन्होंने रोग निदान के लिए प्रभामंडल के अध्ययन को बहुत उपयोगी माना है।

इस प्रभा मंडल को प्रत्यक्ष सूक्ष्म शरीर की संज्ञा दी गई है। उसका वैज्ञानिक नामकरण 'दी बायलॉजिकल प्लाज्मा बॉडी' किया गया है। कजाकिस्तान के किरोव विश्वविद्यालय की शोधों में कहा गया है कि इस प्रभामंडल को शरीर की उत्तेजित विद्युत् अणुओं का समूह मानने में हर्ज नहीं, पर इसमें इतना और जोड़ा जाना चाहिए कि उसमें जीवाणु भी सम्मिलित है। साथ ही उसकी सत्ता मिश्रित होने पर एक व्यवस्थित एवं स्वचालित इकाई है, उसमें अपनी उत्पादन, परिग्रहण एवं परिप्रेषण क्षमता मौजूद है।

एक बार बोलोन के भौतिकशास्त्र के एक वैज्ञानिक ने प्रयोग के दौरान देखा कि एक मेढक के पाँव से बिजली का प्रवाह निकल रहा है; उससे उस मेढक की मांसपेशियाँ उत्तेजित हो रही हैं। इस जानकारी के आधार पर फोर्ली निवासी डॉ० मेट्र्ची ने कई नई जानकारियाँ हासिल करके बताया कि मांसपेशियों के सिकुड़ने-फैलने से विद्युत् धाराएँ उत्पन्न होती हैं। इससे पता चला कि शरीर के आंतरिक-संस्थानों में विद्युत् के छिपे खजाने हैं। इस पर अंग्रेज वैज्ञानिक वॉल्टर ने बहुत खोजें कीं और उन खोजों का लाभ-चिकित्सा जगत् को प्रदान किया।

मनुष्य शरीर में विद्युत् की तेज तरंगें विद्यमान हैं; यह बात १८६६ में सर्वप्रथम फ्रांस से निकलने वाली 'मेडिकल टाइम्स एंड गजेट' के अप्रेल अंक में डॉक्टरों द्वारा निरीक्षण के एक ताजे बयान के रूप में सामने आई। लियोन्स में एक गृहस्थ के घर एक बच्चा पैदा हुआ। बच्चा सात महीने का हुआ, तभी से घर वालों को शिकायत होने लगी कि बच्चे के शरीर को स्पर्श करने से बिजली का झटका लगता है। दसवें महीने तक स्थिति यह हो गई कि बच्चे के पास जाना भी कठिन हो गया। कई लोग हिम्मत करके उसके पलने के पास गए भी, पर उसके झटके को सहन

न कर सके। वे झटका खाकर नीचे गिर गए। अंततः बच्चे की मृत्यु हो गयी। मरने से १० सेकंड पूर्व उसके शरीर से हल्का नीला प्रकाश प्रस्फुटित हुआ। डॉक्टरों ने उसके फोटो भी लिए, पर वे उसका कुछ विश्लेषण न कर सके। बच्चा मर गया—तब न उसके शरीर में गर्मी थी न कोई झटका। इससे यही तो साबित हुआ कि मनुष्य में प्राण विद्युत् जैसी ही कोई शक्ति है, चाहे वह ग्रहण किए हुए अन्न से उत्पन्न होती हो या किन्हीं और आकाशस्थ माध्यमों से, पर यह निश्चित है कि यह विद्युत् ही जीवन, गति और चेतना को धारण करने वाली है। उसकी जानकारी न हो तब तक मनुष्य जीवन की यथार्थता नहीं जानी जा सकती, विज्ञान चाहे कितनी ही प्रगति क्यों न कर ले ?

येल विश्वविद्यालय में न्यूरोलॉजी के प्रो० हेराल्डवर ने प्रमाणित किया है कि प्रत्येक प्राणी एक 'इलेक्ट्रोडायनेमिक' आवरण से घिरा है। उसकी चेतनात्मक क्षमता को इसी क्षेत्र के कारण बाहर संप्रेषण और दूसरे प्रभावों को पकड़ने की सुविधा होती है। इस विद्युतीय आवरण की शोध में आगे चलकर विज्ञानी लियोनाई रोविंग्स ने यह प्रमाणित किया कि वह लोह कवच नहीं है, वरन् मस्तिष्क के प्रभाव से उसे हल्का-भारी, उथला और गहरा किया जा सकता है। उसकी कार्यक्षमता घटाई या बढ़ाई जा सकती है।

विश्व ज्ञान की असीम संपदा को 'यूनिवर्सल मैमोरी ऑफ नेचर' कहा जाता है। इसी की चर्चा 'बुक ऑफ लाइफ' के नाम से भी होती है। इस पुस्तक में विश्व चेतना का आरंभ से अब तक का इतिहास अंकित है। 'माइक्रो फिल्मों' की विशालकाय लाइब्रेरी की तरह इसे समझा जा सकता है। मोटे रूप में तो पता नहीं चलता कि कहाँ, क्या-क्या अभिलेख अंकित हैं, पर विशेषज्ञ यह तलाश कर सकते हैं कि इस संग्रहालय की अलमारी के किस खाने में—किस स्थान पर, क्या रखा हुआ है ? इस कला में

प्रवीणता प्राप्त करने के लिए मस्तिष्कीय विद्या की साधना की जाती है। इस प्रक्रिया को पदार्थ वैज्ञानिक अपने ढंग से और आत्म विज्ञानी अपने ढंग से विकसित कर सकते हैं। ध्यान-धारणा एवं तप-साधना से भी यह संभव है और उन परामनोविज्ञानी प्रयोगों से भी, जो इस क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा इन्हीं दिनों अपनाये जा रहे हैं।

भौतिक क्षेत्र में विद्युत् की अनेकानेक विदित एवं अविदित धाराओं की महत्ता को समझा जा रहा है। उसके प्रभाव से जो लाभ उठाया जा रहा है, उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ अगले दिनों मिलने की अपेक्षा की जाती हैं। ठीक इसी प्रकार मानवी विद्युत् के अनेकानेक उपयोग सूझ पड़ने की संभावना सामने है। विज्ञान इस क्षेत्र में तत्परतापूर्वक संलग्न है और विश्वासपूर्वक कई उपलब्धियाँ प्राप्त करने की स्थिति में है।

चेकोस्लोवाकिया, पोलेंड और बुलगारिया के जीवशास्त्री मनुष्य की अतींद्रिय क्षमताओं के बारे में विशेष रूप से दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने पिछले तीस वर्षों में आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त की हैं। दूरदर्शन, विचार संग्रहण, भविष्य कथन अब शोध के पुराने विषय हो गये। उसमें नई कड़ी 'सायकोकाइनेसिस' की जुड़ी हैं। इस लंबे शब्द का संक्षिप्त संकेत है—(पी० के०)। इसका अर्थ है—विचार शक्ति में वस्तुओं को प्रभावित एवं परिचालित करने की सामर्थ्य। जिस प्रकार आग या बिजली के सहारे वस्तुओं का स्वरूप एवं उपयोग बदला जा सकता है, उन्हें स्थानांतरित किया जा सकता है, वैसी ही संभावना इस बात की भी है कि मानव शरीर में पाई जाने वाली विशिष्ट स्तर की विद्युत्धारा से चेतना स्तर को प्रभावित किया जा सकेगा। इससे न केवल अतींद्रिय क्षमता के विकसित होने से मिलने वाले लाभ मिलेंगे, वरन् शारीरिक और मानसिक रोग निवारण में भी बहुत सहायता प्राप्त होगी।

एक रूसी परामनोविज्ञानी कामेंस्की और कार्ल निकोलायेव ने अपने शोधों के अनेक विवरणों का हवाला देते हुए बताया है कि दूरस्थ अनुभूतियाँ यों यदा-कदा लोगों को अनायास भी होती रहती हैं, किंतु उसके लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित करने पर इस अनुभूति को और भी अधिक स्पष्ट एवं विकसित किया जा सकता है। इस संदर्भ में हुए परीक्षणों का विस्तृत विवरण प्रावदा मेंगजीन में 'कॉस्मॉस बॉडी' नामक लेख के नाम से प्रकाशित हुआ था।

मनुष्य की शारीरिक संरचना अन्य प्राणियों की तुलना में विचित्र और अद्‌भुत है। कर्मेंद्रियों में हाथों की बनावट ऐसी है, जिसके सहारे अनेकों शिल्पों-कौशलों में प्रवीणता प्राप्त हो सके। आँखें मात्र देखने के ही काम नहीं आतीं, वरन् उनसे निकलने वाला तेजस् दूसरों को प्रभावित-आकर्षित करने के भी काम आता है।

मस्तिष्क तो अपने आप में असाधारण विद्युत् संस्थान है। अब तक बुद्धिबल, मनोबल की ही प्रशंसा थी। अब उन प्रवाहों का भी पता चल रहा है, जो व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करने और उसकी खोज-खबर लाने में समर्थ हैं। आत्मसत्ता की गरिमा को यदि समझा जा सके और उसकी खोजबीन में, उत्पादन-अभिवर्धन में लग जाया जाय तो इतना कुछ प्राप्त किया जा सकता है, जो अब तक की भौतिक उपलब्धियों की तुलना में हल्का नहीं, भारी ही बैठेगा।

तपस्वियों के आश्रमों में हिंसक और अहिंसक प्राणी बैर-भाव भूलकर प्रेमभाव से रहते देखे गये हैं। नेताओं में इस प्रकार की विशेषता प्रायः पाई जाती है। उनका आकर्षण लोगों को प्रभावित व सहमत करता है और अनुयायी बनने के लिए विवश करता है। यदि यह प्रभाव उथला है तो सम्मोहित व्यक्ति थोड़े ही समय में उस प्रभाव से मुक्त होकर पूर्व स्थिति में पाये जाते हैं, पर यदि

उसमें सघनता हुई तो प्रभाव भी स्थायी बना रहता है। यह प्रतिभाशाली व्यक्तित्व हर क्षेत्र में पाए जाते हैं और साथियों को प्रभावित करते हैं। डाकुओं तक को साथी मिल जाते हैं और सामने आने पर प्रतिशोध करने वालों की घिग्घी बँध जाती है। रूप और सौंदर्य के आकर्षण पर दूसरे अनायास ही मोहित होते हैं। नर्तकियों और वधुओं से लेकर छोटे बालकों की सुकोमलता में ऐसा आकर्षण पाया जाता है, जो संपर्क में आने वालों का मन बरबस अपनी ओर खीचें। इस आकर्षण के पीछे कोई गहरा कारण नहीं है, मात्र तेजोवलय की वह प्रभावशाली शक्ति ही काम करती है, जिसके आगे दूसरे अनायास ही झुकते-खिंचते चले जाते हैं। इस मानवी चुंबकत्व को वैज्ञानिकों की भाषा में ऐनिमल मैग्निटिज्म कहते हैं।

तेजोवलय संपूर्ण शरीर के इर्द-गिर्द छाया रहता है। पैरों की ओर उसका घेरा कम होता है। क्रमशः वह अधिक चौड़ा होता जाता है और मस्तिष्क तक पहुँचते-पहुँचते उसकी चौड़ाई प्रायः ड्यौढ़ी हो जाती है। बेर का फल जैसे नीचे पतला-नोकदार होता है और उसका सिरा मोटा होता है, लगभग इसी प्रकार से आस-पास यह प्रकाश-पुंज फैला रहता है। इसकी चौड़ाई शरीर से बाहर ३ से ७ फुट तक की पाई जाती है।

खगोलवेत्ता जानते हैं कि आकाश में अनेकों तारे ऐसे हैं, जिनका प्रकाश पृथ्वी तक आने में हजारों वर्ष लग जाते हैं। हो सकता है कोई तारा हजारों वर्ष पूर्व मर गया हो, पर उसका प्रकाश अपनी चाल से चलता हुआ अब पृथ्वी पर आना आरंभ हुआ हो और आगे हजारों वर्ष तक चमकता रहे, जबकि उसकी मृत्यु चिरकाल पूर्व हो चुकी है। प्रकाश की गति प्रति सेकंड १ लाख ८६ हजार मील है। इस चाल से अधिक उसकी दौड़ नहीं, पर मनुष्य मन इससे भी अधिक द्रुतगामी है। राकेटों को चंद्रमा तक पहुँचने में कई दिन लग जाते हैं, पर मन तो वहाँ एक

क्षण में पहुँच सकता है। यह ध्यान रखने की बात है कि मन मात्र कल्पना ही नहीं है, वरन् इसके साथ चेतनात्मक ऊर्जा जुड़ी हुई हो तो वह प्रकाश की तरह ही एक सशक्त तथ्य बन जाती है और वही कार्य करती है, जो अंतरिक्षव्यापी ताप, चुंबकत्व जैसी शक्तियाँ काम करती हैं।

यदि प्रकाश की गति का उल्लंघन करके अपनी चेतनात्मक ऊर्जा आगे निकल जाय और वहाँ जा पहुँचे, जहाँ अभी हजार वर्ष पूर्व निःसृत हुई प्रकाश तरंगें नहीं पहुँच पाई हैं, तो निस्संदेह उस समय की समस्त घटनाएँ इस प्रकार प्रत्यक्ष देखी जा सकती हैं, मानो अभी-अभी ही वे घटित हो रही हैं। यदि हमारे शक्तिशाली अचेतन विद्युत्-संस्थान ध्यान चेतना को इतना सक्षम बनाएँ कि प्रकाश की गति पिछड़ जाए, तो कोई कारण नहीं कि हम चिर अतीत की घटनाओं, व्यक्तियों को देख-समझ न सकें। इतना ही नहीं, जो महामानव हजारों-लाखों वर्ष पूर्व दिवंगत हो गए, उनके अंतरिक्ष में उड़ते हुए तेजोवलय के साथ संबंध बना सकते हैं और वही लाभ ले सकते हैं, जो उनके पास बैठने या उनका प्रभाव ग्रहण करने से संभव हो सकता था। उपरोक्त सफलता प्राप्त करने वाला व्यक्ति श्रीकृष्ण जी के मुख से निकली हुई गीता उसी तरह सुन सकता है, जिस तरह अर्जुन ने समीप बैठकर सुनी थी। शुकदेव जी द्वारा परीक्षित को सुनाई गयी भागवत को ज्यों का त्यों सुना जा सकता है। वशिष्ठ जी द्वारा राम को सुनाई गयी योगवाशिष्ठ को अभी भी इसी रूप में श्रवण कर सकना कठिन न रहेगा, राम चरित्र और कृष्ण चरित्र की सारी घटनाएँ यथाक्रम देखी जा सकेंगी। त्रिकालदर्शी ऋषि इस विद्या में पारंगत हो चुके थे और उनके हाथ में बहुत कुछ—सब कुछ जानने की शक्ति थी। इतना ही नहीं, वे भावी घटनाक्रम की संभावनाओं को मोड़-बदल भी सकते थे। इसके प्रमाणों से अनेक

शास्त्र-पुराण भरे पड़े हैं। वे उपलब्धियाँ भविष्य में भी प्राप्त की जा सकती हैं।

वर्तमान में विभिन्न स्थानों में घटित हो रहे घटनाक्रमों को दिव्यदर्शी व्यक्ति देख या जान सकता है, परस्पर संवादों और संदेशों का विनिमय कर सकता है। इतना ही नहीं, यदि उसके पास अपनी कोई प्रेरक एवं उपयोगी क्षमता होगी, तो उसे किसी दूसरे के लिए प्रेरित करके उसे लाभान्वित भी कर सकता है; किंतु इसके लिए तप-साधना द्वारा उपार्जित आत्मबल का संपादन नितांत आवश्यक है। हम चाहें तो शरीर, बुद्धि और धन जैसी संपदाओं की तरह आत्म शक्ति की विभूतियाँ भी संपादित कर सकते हैं और इसके आधार पर हमारा मानवी चुंबकत्व—तेजोवलय इतना प्रचंड हो सकता है कि व्यक्तियों तथा वस्तुओं को अभीष्ट मात्रा में प्रभावित किया जा सके और अपने आपको हर क्षेत्र में समर्थ-सफल सिद्ध किया जा सके।

➢ शक्ति का विपुल भंडार अपनी मुट्‍ठी में

यों शरीर को हाड़-मांस का पुतला, मिट्‍टी का खिलौना और पंचतत्त्वों का बेमेल खेल कहा जाता है। पानी के बुलबुले से उपमा देकर क्षण भंगुर बताया जाता है। इस कथन में इतना ही सार है कि यह विपत्ति टूट पड़ने पर नष्ट भी हो सकता है, पर जैसी भी कुछ इसकी सत्ता है, उस पर दृष्टिपात करने से वह परमाणु भट्‍ठियों जैसा शक्तिशाली संयंत्र सिद्ध होता है। उसकी संभावनाएँ अनंत हैं। ब्रह्मांड का बीज इस पिंड को सही ही बताया गया है। जो शक्तियाँ ब्रह्मांड में देखी गयी हैं या भविष्य में देखी जायेंगी, उनका बीज इस पिंड में इस प्रकार मौजूद है कि यदि कोई उसे सींच सके तो देखते-देखते विशालकाय वृक्ष के रूप में परिणत हो सकता है।

मांसपेशियों में भरी हुई, कोशिकाओं में छलकती हुई, त्वचा में चमकती हुई ऊर्जा—दियासलाई की तरह छोटी है; पर यदि उसे ठीक तरह जला दिया जाय और अभीष्ट आधार के साथ नियोजित कर दिया जाय, तो उसे प्रचंड दावानल के रूप में संव्याप्त भी देखा जा सकता हैं। नन्हें-से परमाणु को जब अपनी शक्ति प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है, तो वह धरती को हिला देता है और आसमान को कँपा देता है। मानव शरीर की ऊर्जा में भौतिक जगत् में काम करने वाली ऊर्जा के अतिरिक्त चैतन्य तेजस् भी विद्यमान है। अस्तु, इसकी सामर्थ्य और भी अधिक बढ़ जाती है। यदि उसका प्रकटीकरण एवं प्रस्फुरण किया जा सके तो उसका चमत्कार देखते ही बने। मनुष्य में ऋद्धि-सिद्धियों का भंडार भरा-पूरा परिलक्षित हो।

शरीर पर लिपटे हुए सीधे-साधे त्वचा परिधान को ही गंभीरतापूर्वक देखिये। उसकी रचना और प्रक्रिया कितनी संवेदनशील, सूक्ष्म, जटिल और सशक्त है। एक वर्ग फुट त्वचा में लगभग ७२ फुट लंबी तंत्रिकाएँ जाल की तरह बिछी हुई हैं। इतनी ही जगह में रक्त नलिकाओं की लंबाई लगभग १२ फुट बैठती है। शरीर की गर्मी को जब बाहर निकलना आवश्यक होता है, तो वे फैल जाती हैं और जब ठंड लगती है, तो भीतर की गर्मी बाहर न निकलने देने से शरीर को गरम बनाए रखने के लिए वे सिकुड़ जाती हैं।

संपूर्ण शरीर की त्वचा में लगभग दो लाख स्वेद ग्रंथियाँ हैं। इनमें से पसीने के रूप में शरीर के हानिकारक पदार्थ बराबर बाहर निकलते रहते हैं। यदि स्नान करने में आलस बरता जाय तो चमड़ी पर पसीना सूखकर एक परत जैसी बन जाती है और उसके विषैलेपन से बदबू ही नहीं आती, वरन् खुजली, दाद, फुन्सियाँ जैसी बीमारियाँ भी पैदा हो जाती हैं। चमड़ी की बीमारियों में कोढ़ मुख्य है। संसार में एक करोड़ पाँच लाख से अधिक

कोढ़ी हैं, जिनमें से २६ लाख से अधिक तो केवल भारत में ही हैं।

यों चमड़ी सीधी-सफाचट दीखती है, पर उसमें इतने छोटे-छोटे भेद-प्रभेद भरे होते हैं कि आश्चर्य करना पड़ता है कि किस प्रकार उसमें इतनी चीजें भरी हुई हैं। एक वर्ग सेंटीमीटर चमड़ी में ५ तेल ग्रंथियाँ, १० रोएँ, ३ लाख कोशिकाएँ, ४ ताप सूचक तंत्र, २०० दर्द सूचक स्नायु छोर, २५ स्पर्शानुभूति तंत्र, ४ गंजस्नायु, ३ हजार संवेदना ग्राहक कोशिकाएँ, १०० स्वेद ग्रंथि, ३ फुट रक्त वाहिनियाँ। इन सबका अपना-अपना अनोखा कर्तव्य है, और वह ऐसा अद्भुत है कि मानव कृत समस्त संयंत्रों को इस त्वचा प्रक्रिया के सम्मुख तुच्छ ठहराया जा सकता है।

त्वचा के भीतर भरी हुई मांसपेशियों को देखिए। यों वे घिनौनी लगती हैं, पर उनका प्रत्येक कण कितना ऊर्जा संपन्न है ? इसे देखते हुए अवाक् रह जाना पड़ता है। ताकत का लेखा-जोखा लिया जाता है। खेलों में, युद्धों में, प्रतियोगिताओं में, काम के मूल्यांकन में ताकत की परख होती है। कौन, कितना ताकतवर है ? कौन कितना कमजोर ? इस बात का लेखा-जोखा लिया जाता है, यह ताकत कहाँ रहती है ? कहाँ से आती है ?

शारीरिक शक्ति का स्रोत हमारी मांसपेशियाँ, लचक, स्फूर्ति, आकुंचन-प्रकुंचन सब कुछ उन्हीं के ऊपर निर्भर रहता है। जब उनमें समर्थता भरी रहती है, तो मनुष्य को वज्रअंगी, लौह पुरुष आदि विशेषणों से संबोधित किया जाता है। कुश्ती, दौड़, भारोत्तोलन, छलांग, दबाव आदि के अवसरों पर जो करामात शरीर दिखाता है, उसे स्वस्थ मांसपेशियों का चमत्कार ही कहना चाहिए। यदि वे ढीली पड़ जाएँ, क्षमता खो बैठें, तो फिर चलना, खड़ा होना और भोजन पचाना तक कठिन हो जाय।

मांसपेशियों को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं— (१) बहुत बारीक तंतुओं से बनी हुई, जो गति पैदा करती हैं;

चलने, खाने, हँसने आदि में इन्हीं का प्रयोग होता है। मस्तिष्क की आज्ञा-इच्छा होने पर ही इनमें सक्रियता आती है। (२) जो स्वतः निरंतर कार्य करती हैं। पाचन क्रिया, श्वास-प्रश्वास, रक्त संचालन, पलक झपकना, पसीना निकलना आदि कार्य वे स्वतः संपन्न करती रहती हैं। (३) वे जिनमें दोनों विशेषताएँ हैं और शरीर के भीतर की रासायनिक क्रिया से प्रभावित रहती हैं। इन तीनों का ही अपना महत्त्वपूर्ण उपयोग है। इन्हीं के सम्मिश्रित प्रयत्नों के फलस्वरूप हम स्वस्थ और बलिष्ठ दिखाई पड़ते हैं। यदि इसमें कमजोरी आने लगे तो दर्द होने लगेगा। पैरों की भड़कन, पीठ दर्द और कमर का दर्द जैसी शिकायतें मांसपेशियों में अकड़न, कठोरता बढ़ने के कारण ही होती हैं।

मांसपेशियों का काम देखने में सरल-सा लगता है, पर वस्तुतः उनकी संरचना और कार्य पद्धति इतनी अधिक जटिल है कि अन्वेषक चकित रह जाते हैं। अणु विज्ञान को, उसके क्रिया-कलाप को, अणु यंत्रों को ही जटिल माना जाता है, पर मांसपेशियों को इच्छित या अनिच्छित क्रिया-कलाप करने में कितनी जटिल क्रिया पद्धति का सहारा लेना पड़ता है, उसका विश्लेषण करते हुए कारीगर की अद्‌भुत कारीगरी को चकित रहकर ही देखना पड़ता है।

हाथ-पैर सबके पास हैं। फिर किसी में क्षमता कम व किसी में अधिक क्यों होती है ? समझा जाता है यह अभ्यास से घटती-बढ़ती हैं। बेशक इच्छा-शक्ति और अभ्यास भी सहायक होता है, पर मूल बात मांसपेशियों की सशक्तता ही मनुष्य की बलिष्ठता और कोमलता का मुख्य कारण है।

भोजनालय में जो कार्य चूल्हे का है, कारखानों में जो कार्य बायलर या इलेक्ट्रिक मोटर का है, वही कार्य मांसपेशियाँ करती हैं। गर्मी पैदा करना उन्हीं का काम है। इस गर्मी के बल पर ही अन्य सब अंग गतिशील रहने में समर्थ होते हैं। मांसपेशियाँ सारे

शरीर को गरम रखती हैं और स्वयं गरम रहती हैं। उन्हें एक प्रकार के हीटर भी कह सकते हैं। शरीर और मन का संबंध बनाए रखने में इनकी भूमिका अद्‌भुत है। ज्ञान तंतु समूह इन्हीं में ओत-प्रोत होता है। हँसने से लेकर रोने, नृत्य से लेकर भाग खड़े होने तक, सोने से लेकर जगने तक के समस्त मनोभावों का प्रकटीकरण शरीर द्वारा तभी संभव होता है, जब यह मांसपेशियाँ ठीक से काम करें। रक्तचाप, हृदय रोग जैसे जटिल रोगों में वस्तुतः उन स्थानों की मांसपेशियाँ ही दुर्बल हो जाती हैं। यह दुर्बलता जितनी बढ़ेगी, रुग्णता और मृत्यु का प्रकोप उसी अनुपात से होता चला जायेगा।

नोबुल पुरस्कार विजेता आकार जे० ज्योगी ने मांसपेशियों की सक्रियता के पीछे दो रासायनिक तत्त्व खोजे हैं—(१) प्रोटीन सार्क्टन, (२) मायोसिन। वे कहते हैं कि इन दोनों का संयोग मांसपेशियों में सक्रियता उत्पन्न करता है। यह दोनों प्रोटीन कहीं बाहर से नहीं आते, स्वतः ही पैदा होते हैं और उनके उत्पादन में इच्छा शक्ति का बहुत योगदान रहता है।

आहारशास्त्र की दृष्टि से प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की उपयुक्त मात्रा मांसपेशियों के पोषण के लिए आवश्यक है, पर साथ-साथ इस खुराक को ग्रहण करने और आत्मसात् करने की मौलिक क्षमता तो पहले से ही मांसपेशियों में होनी चाहिए। यदि वह न हो, तो ऐसी खुराक भी कुछ विशेष कारगर नहीं होती।

अधिक काम करने से यह मांसपेशियाँ भी थक जाती हैं। उन्हें समुचित विश्राम न मिले तो अधिक दौड़ाने पर थककर गिर पड़ने वाले घोड़े की तरह वे भी गड़बड़ाने लगती हैं और अधिक काम करने की उतावली करने वाला, सोने का अंडा रोज देने वाली मुर्गी का पेट चीरकर सारे अंडे एक साथ निकाल लेने वाले लालची की तरह घाटे में ही रहता है। काम करने और विश्राम

देने के संतुलन का ध्यान रखकर ही मांसपेशियों को स्वस्थ और सक्रिय रखा जा सकता है।

कुछ पेशियाँ कभी भी विश्राम नहीं लेतीं। हृदय, मस्तिष्क, पाचन यंत्र, फुफ्फुस आदि का काम दिन-रात निरंतर चलता रहता है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत कभी भी इनको छुट्‌टी नहीं मिलती। यह थकान ही मौत का कारण है। यदि बीच-बीच में उन्हें विश्राम मिल जाया करे, तो आयुष्य बढ़ाने में मांसपेशियों के लिए यह पुनः शक्ति संचय बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

गहराई में क्यों जाया जाए, शक्ति के चेतना स्तर को अभी क्यों छुआ जाए ? त्वचा और मांसपेशियों की सम्मिलित शक्ति का ही विवेचन किया जाय तो प्रतीत होगा कि इनका सम्मिलित स्वरूप ही किसी बड़े बिजलीघर से कम नहीं है।

शक्ति का मूल स्रोत है ऊर्जा। बिजली का उत्पादन ऊर्जा से ही होता है। भाप द्वारा, कोयला जलाकर, तेल-पेट्रोल से, पानी को ऊँचे से गिराकर उसके वेग द्वारा और अब अणु-शक्ति से बिजली पैदा की जाती है। यह ऊर्जा की ही विविध प्रतिक्रिया है।

विद्युत् उत्पादन का एक आधार रासायनिक क्रिया भी है। बैटरी इसी आधार पर बनती है। वोल्टा, एंपीयर, आरस्टेड, फैराडे वैज्ञानिकों ने इस संबंध में नये आविष्कार किए हैं।

किसी तंत्र के कार्य करने की क्षमता ऊर्जा कहलाती है। ऊर्जा के अनेक स्तर हैं। पदार्थों की गति के कारण उत्पन्न होने वाली गतिज ऊर्जा, रासायनिक सम्मिश्रण से उत्पन्न होने वाली रासायनिक ऊर्जा, वस्तुओं की स्थिति के कारण उत्पन्न स्थितिज ऊर्जा कही जा सकती है। कुछ पदार्थ ऐसे होते हैं, जिनमें अधिक मात्रा में ऊर्जा तत्त्व विद्यमान रहते हैं, उन्हें ईंधन कहते हैं। ऊर्जा एक से दूसरे रूप में रूपांतरित तो होती रहती है, पर उसका नाश कभी नहीं होता। यह रूपांतरण प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। रासायनिक पदार्थ जलते हैं और बैटरी से विद्युत् उत्पन्न होती है।

पैरों द्वारा घुमाए जाने पर साइकिल चलती है; यह पैरों की ऊर्जा का साइकिल की गति में रूपांतरण है। परमाणु ईंधन विखंडित होकर ही परमाणु शक्ति उत्पन्न होती हैं। बॉयलर के नीचे कोयला जला और ज्वलनशीलता ने ताप के रूप में ऊर्जा उत्पन्न की। भाप बनी, उससे रेल चली। गैस बनी, उससे प्रकाश की बत्तियाँ जलीं। भाप टरबाइन, फ्लोरोसेंट लैंप, हीटर, रासायनिक मिश्रण, विद्युत् जेनरेटर की प्रक्रिया में ऊर्जा की शक्ति क्षमता को विविध प्रयोजनों के लिए विविध रूपों में कार्यान्वित किया जाता है। आजकल प्रोपेन गैस से चलने वाले, ताप विद्युत् उत्पन्न करने वाले हल्के जेनरेटर टेलीविजन आदि छोटे कामों के लिए खूब प्रयोग होते हैं।

दो विभिन्न प्रकार के धातुओं अथवा धातु मिश्रणों के तारों के सिरे यदि पिघलाकर जोड़ दिए जाएँ और उनके सिरों को विभिन्न तापमान पर रखा जाए, तो उनमें विद्युत् धारा प्रवाहित होने लगेगी। यह तार विद्युत् है।

कुछ धातुएँ गरम होने पर अपनी सतह में इलेक्ट्रोन उभारती हैं। पास में कोई ठंडी वस्तु हो तो यह उत्सर्जित इलेक्ट्रोन उस पर जमा हो जाते हैं। इस स्थानांतरण से विद्युत् प्रवाह आरंभ हो जाता है। स्थानांतरण के मध्य भाग में धनावेश युक्त कणों वाली कोई गैस भर दी जाती है, इस प्रकार प्लाज्मा बनता है। प्लाज्मा की उपस्थिति इलेक्ट्रोनों के आवेश को संतुलित करने के लिए आवश्यक है।

इन दिनों मैग्नेटो हाइड्रोडाइनैमिक (चुंबकीय द्रव गतिज पद्धति) विद्युत्-निर्माण में सबसे अधिक प्रयुक्त होती है। इसका आधार यह है कि धात्विक चालकों को चुंबकीय क्षेत्र में घुमाकर विद्युत्वाहक बल (इलेक्ट्रोमोटिव फोर्स) पैदा की जाय। इसके स्थान पर यदि दूसरा प्रयोग किया जाए तो भी यही बल पैदा होगा। धात्विक चालकों के स्थान पर यदि गैसीय चालक 'प्लाज्मा'

का प्रयोग किया जाए और उस गैस को चुंबकीय क्षेत्र से होकर निकाला जाय तो विद्युत् उत्पादन का वही प्रयोजन पूरा होगा।

एक जस्ते की छड़, एक ताँबे की छड़ यदि नीबू के रस में डाली जायें तो उनके बीच विभवांतर पैदा होता है और उससे उपकरणों में विद्युत्-प्रवाह चल पड़ता है। रासायनिक बैटरियाँ इसी पद्धति से बनती हैं।

ईंधन-सेल की पद्धति को, न समाप्त होने वाली बैटरी पद्धति कहा जा सकता है। प्रयुक्त रसायनों की शक्ति जब समाप्त हो जाती है, तब बैटरी अपना काम बंद कर देती है। पर ईंधन-सेल का प्रवाह क्रम बंद नहीं होता। हाइड्रोजन-ऑक्सीजन के मेल से पानी की उत्पत्ति होती है। यदि वे दोनों गैसें लगातार मिलती रहें तो पानी का निर्माण अनवरत रूप से होता रहेगा। इसमें बाहरी और किसी ईंधन की जरूरत नहीं पड़ेगी। इसी आधार पर यह शोध चल रही है कि हाइड्रोजन-ऑक्सीजन के सम्मिश्रण की भाँति या कोयला, हवा अथवा पेट्रोलियम-हवा के सम्मिश्रण से क्या ईंधन-सेल बन सकते हैं ?

अंतरिक्ष यात्रा में यह ईंधन-सेल ही काम आता है। भारी चीजों की बड़ी दूरी तक उड़ान संभव ही नहीं है। ईंधन-सेल का एक और स्रोत ढूँढ़ा जा रहा है, वह है सूर्य-ताप। साधारणतया सूर्य से गरमी और रोशनी प्राप्त की जाती है। यों साधारणतया वह भी काम की चीज है, पर उसमें जो अगली संभावनाएँ विद्यमान हैं, उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अणु भट्‌ठियाँ और अणु रसायन बनाने के महँगे और खतरनाक झंझट में पड़ने की अपेक्षा सूर्य से शक्ति प्राप्त करके बिजली की आवश्यकता पूरी कर सकना शक्य हो जाएगा। सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी पर एक वर्ग मीटर जगह में १४०० वाट के करीब बिजली बिखेरती है। इस शक्ति का उपयोग जिस दिन मनुष्य के हाथ में होगा, उस दिन ऊर्जा का विपुल भंडार उसकी मुट्‌ठी में आ जायेगा।

बैटरी क्षेत्र में एक नया प्रयोग न्यूक्लीय बैटरियों का अब जल्दी ही बड़े पैमाने पर प्रयुक्त होने लगेगा। एक खोखला बेलन चारों ओर रहेगा। बीच में छड़ रहेगी। उस छड़ पर बीटा किरणों का उत्सर्जन करने वाले रेडियो आयसोटोप चढ़ा दिए जायेंगे। बेलन की सतह पर इलेक्ट्रोन जमा होंगे। छड़ और बेलन को तार से जोड़ दिया जायेगा और विद्युत् धारा प्रवाहित होने लगेगी।

लोह विद्युत् का चुंबकीय विद्युत् में रूपांतर सैद्धांतिक रूप से संभव मान लिया गया है। अब उसके सरलीकरण के प्रयोग चल रहे हैं। बैरियम, टाइटेनियम के रवे को यदि १२०° से० से अधिक गरम किया जाए तो उसकी आंतरिक संरचना में परिवर्तन उपस्थित होता है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया को यंत्रों द्वारा विद्युत् में रूपांतरण किया जा सकता है। चुंबक रूपांतरण का भी यही आधार है।

शरीर को रासायनिक आधार पर विनिर्मित होने वाली बैटरी के समकक्ष रखा जा सकता है। इसके घटक ईंधन-सेल कहे जा सकते हैं, जो मरणपर्यंत सूक्ष्म बने रहते हैं। जब तक जीवन है तब तक इस बैटरी की क्षमता समाप्त नहीं हो सकती। अंतरिक्ष यात्रियों के लिए यही ईंधन उपयुक्त समझा गया है। मनुष्य भी एक अंतरिक्ष यात्री है। वह अपने पिता के घर से इस मर्त्यलोक में महत्त्वपूर्ण शोध अथवा प्रयोजन पूरे करने आया है। उसे अपनी जीवन यात्रा के लिए ईंधन चाहिए, वह त्वचा और मांसपेशियों के रूप में स्पष्टतः मिला हुआ है। इतना ही नहीं उसके पास और भी अधिक गहरे शक्तिस्रोत हैं, पर ऊर्जा के स्थूल रूप में इस मांस-मिश्रित कलेवर को भी अति महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

इस शरीरगत ऊर्जा का चैतन्य प्राणियों पर प्रत्यावर्तन करके उन्हें लाभान्वित किया जा सकता है। इसका एक छोटा-सा प्रयोग जर्मन के डॉ० मैस्मर ने किया और उसे मैस्मरेज्म नाम दिया।

मैस्मरेज्म के आविष्कर्ता हैं—जर्मनी के डॉ० फ्रासिस्कम एंटोनियस मैस्मर। वियना में उन्होंने चिकित्साशास्त्र पढ़ा और उपाधि प्राप्त की। उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण शोध निबंध प्रस्तुत किया था, जिसमें बताया गया था कि अविज्ञात नक्षत्रों से एक तरल चुंबकीय पदार्थ इस धरती पर आता है और उससे हम सब प्रभावित होते हैं। इस पदार्थ का संतुलन यदि शरीर में गड़बड़ाने लगे तो शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। यदि किसी प्रकार यह चुंबकीय संतुलन ठीक कर दिया जाए तो बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य फिर ठीक हो सकता है।

इसका प्रयोग भी उन्होंने रोगियों पर किया और सफलता तथा ख्याति भी अर्जित की। वे लोह चुंबक को अपने शरीर की विद्युत् से प्रभावित करते थे और फिर उस चुंबक को रोगी के शरीर से स्पर्श कराके उस अभाव की पूर्ति करते थे, जो रोग का कारण थी। इसके लिए वे अपनी संकल्प शक्ति की साधना द्वारा अपना मनोबल तथा आवश्यक चुंबकीय विद्युत् की मात्रा बढ़ाते थे। उनकी चिकित्सा प्रणाली में दूर से आने वाले मधुर और मादक संगीत का प्रयोग किया जाता था, ताकि रोगी को मानसिक एकाग्रता और भाव सांत्वना का लाभ मिले। अपने में शारीरिक विद्युत् की मात्रा बढ़ना और उस लौह चुंबक के माध्यम से रुग्ण व्यक्ति को लाभान्वित करना, यही उनका चिकित्सा क्रम था। लाभान्वित रोगियों के मुँह से प्रशंसा सुनकर कष्ट-पीड़ितों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी, यह हर रोज सैकड़ों तक पहुँचती।

अमेरिका में इन दिनों कई चोटी के शल्य चिकित्सक इस प्रणाली का प्रयोग कर रहे और सम्मोहन विज्ञान के आधार पर रोगियों को सेवा-सहायता पहुँचा रहे हैं। महिलाओं की प्रसव-पीड़ा कम करने में तो इन प्रयोगों को शत-प्रतिशत सफलता मिली है। दर्द न होने के इंजेक्शन लगाने की अपेक्षा सम्मोहन प्रक्रिया द्वारा

कष्टमुक्त स्थिति का लाभ देना उचित और हितकर समझा गया है। प्रसूताओं को भी यही उपचार अधिक उपयुक्त लगा है।

डॉ० हार्थमैन बेहोशी की आवश्यकता से आधी मात्रा दवा देकर और आधा सम्मोहन का उपयोग कर अपना काम चलाता है। शल्य-चिकित्सा के समय आवश्यक एनेस्थिशिया की मात्रा उन्होंने ५० प्रतिशत घटा दी है। इससे रोगी अर्ध-मूर्च्छित भर रहता है। सम्मोहन के प्रभाव से उसे कष्ट बिल्कुल नहीं होता।

कैडर्स अस्पताल में एक ४ वर्षीय लड़की के कान का आपरेशन होना था, उसमें ५ घंटे लगने थे। इतने लंबे समय दवाओं की बेहोशी पीछे घातक सिद्ध हो सकती थी। इसीलिए सम्मोहन के आधार पर आपरेशन करने का निश्चय किया गया। यह आपरेशन सफल रहा। इतनी देर तक इतना गहरा आपरेशन करने की इस सफलता ने इस विज्ञान की महत्ता को अब असंदिग्ध रूप से स्वीकार कर लिया है।

कैन्सर की असहनीय पीड़ा किसी दवा से काबू में नहीं आती। कैन्सर से कोशिकाएँ अनियंत्रित रूप से बढ़ती हैं। जो नई बनती हैं, वे अन्य कोशिकाओं के साथ फिट नहीं बैठतीं। उसका उपचार शल्य चिकित्सा, रेडियो विकिरण आदि से किया जाता है, पर दर्द घटाने का उपचार उपलब्ध न होने से अब उस अभाव की पूर्ति सम्मोहन विज्ञान द्वारा की जाने लगी है और इससे रोगियों को बड़ी राहत मिली है।

मस्तिष्कीय चोट, अर्बुद, सूजन, रक्तचाप, हृदयशूल, उन्माद जैसे कष्टों में सम्मोहन का उपयोग निरापद समझा गया है। कमजोर हृदय वालों पर क्लोरोफार्म जैसी दवाओं की हानिकारक प्रतिक्रिया होती है, इसीलिए उनके ऑपरेशनों में भी सम्मोहन ही ठीक समझा गया है।

डॉ० हार्थमैन ने इस उपचार से न केवल रोगी अच्छे किए हैं, वरन् व्यसनी और बुरी आदत वालों की कुटेवें भी छुड़ा दी हैं।

नशेबाज, जो अपने को आदत से लाचार मानते थे, इस व्यसन से छुटकारा पा सके। बिस्तर में पेशाब कर देने वाले बड़ी उम्र के बच्चे भी इस व्यथा से छूटे।

हृदय के संकुचन के समय यदि रक्तचाप १६० एम० एम० से अधिक हो और प्रकुंचन के समय वह ६० एम० एम० से अधिक हो तो रक्त चाप बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में वायुक्षेमक कोष्ठ पर अधिक दबाव पड़ता है, रक्त संचार में अधिक शक्ति लगानी पड़ती है। यह क्रम कैसे रोका जाय ? इसके लिए अन्य चिकित्सा इतनी उपयोगी सिद्ध नहीं हुई, जितना कि सम्मोहन सफल रहा।

मांसपेशियों द्वारा उत्पादित और त्वचा तंतुओं द्वारा संचारित शरीरगत ऊर्जा को संकल्प शक्ति द्वारा एकत्रित करना और उससे किसी का कष्ट निवारण करना, यही मैस्मरेज्म का प्रचलित प्रयोग है। पर यह आरंभ है, अंत नहीं। यह एक छोटा-सा उपचार मात्र है। योग की तंत्र शाखा में इस शरीरगत ऊर्जा का उच्चस्तरीय उत्पादन और प्रयोग का विधान भरा है। यदि इस आधार पर इस शक्ति-स्रोत से लाभ उठाया जा सके तो मनुष्य अपना और दूसरों का असीम हित साधन कर सकता है।

शरीर के अवयवों के कार्यरत रहने से जीवन-प्रक्रिया का संचालन होता है, इस मोटे तथ्य को सभी जानते हैं। शरीरशास्त्र के विद्यार्थियों को यह भी पता है कि नाड़ी-संस्थान के संचालन में अचेतन मस्तिष्क की कोई सूक्ष्म-प्रक्रिया काम करती है। उसी के आधार पर रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन के क्रिया-कलाप अनायास ही चलते रहते हैं। हमें पता भी नहीं चलता और पलक झपकने—पाचन तंत्र चालू रहने जैसे अगणित कार्यों की अति सूक्ष्म कार्य पद्धति अपने ढर्रे पर स्वसंचालित रीति से चलती रहती है।

मस्तिष्क का अचेतन मस्तिष्क तो जाग्रत् स्थिति में कोई आवश्यकता उत्पन्न होने पर ही कुछ महत्त्वपूर्ण निर्देश देता है, अन्यथा वह ऐसे ही पूर्व स्मृतियों में, भावी कल्पनाओं में उलझा रहता है। यों विद्या, बुद्धि, कुशलता, चतुरता आदि में शिर के अग्र भाग में अवस्थित चेतन मस्तिष्क ही काम आता है, पर शरीर की समस्त क्रिया के संचालन, यहाँ तक कि मस्तिष्क की गतिविधियों को भी गतिशील रखने में यह अचेतन ही काम करता है।

अचेतन की वह कार्य पद्धति, जो स्वसंचालित रूप से शरीर और मस्तिष्क को गतिशील रखती है, उसे 'जीवनी शक्ति' (Vital Energy) कहते हैं। यह एक रहस्य है कि शरीर को सक्रिय रखने वाली इस दिव्य शक्ति का स्रोत कहाँ है ? चेतन और अचेतन मस्तिष्क तो उसके वाहन मात्र हैं। इन उपकरणों को प्रयोग करने के लिए जो यह क्षमता उपलब्ध होती है, उसका भंडार-उद्गम कहाँ है ? शरीरशास्त्री इस प्रश्न का उत्तर कुछ भी दे सकने में समर्थ नहीं हैं। नाड़ी शक्ति तक ही उनकी पहुँच है। यह कहाँ से आती है ? कैसे काम आती है ? घटती-बढ़ती क्यों है ? इस रहस्यमय तथ्य के अन्वेषण को वे अपनी शोध-परिधि से बाहर ही मानते हैं। वस्तुतः जहाँ भौतिक विज्ञान अपनी सीमा समाप्त कर लेता है, अध्यात्म विज्ञान उसके आगे आरंभ होता है।

'जीवन तत्त्व' यों शरीर में ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है और उसी के आधार पर जीवित रहना संभव होता है, पर यह जीवन तत्त्व शरीर का उत्पादन नहीं है। यह अदृश्य और अलौकिक शक्ति है, जिसमें से उपयोगी और आवश्यक अंश यह काय-कलेवर अंतरिक्ष से खींचकर अपने भीतर धारण कर लेता है और उसी से अपना काम चलाता है। इस विश्वव्यापी जीवन तत्त्व का नाम 'प्राण' है।

प्राण व्यक्ति के भीतर भी विद्यमान है, पर वह विश्वव्यापी महाप्राण का एक अंश ही है। बोतल के भीतर भरी हवा की सीमा

की नाप-तौल की जा सकती है और मोटी दृष्टि से उसका पृथक् स्वतंत्र अस्तित्व भी माना जा सकता है, पर वस्तुतः वह विश्वव्यापी वायु तत्त्व का एक अंश मात्र ही है। इसी प्रकार विश्वव्यापी महाप्राण का एक छोटा-सा अंश मानव शरीर में रहता है। उसी अंश को 'जीवन तत्त्व' रूप में हम देखते-अनुभव करते हैं। यह जब न्यून पड़ता है, तो व्यक्ति हर दृष्टि से लड़खड़ाने लगता है और जब वह संतुलित रहता है, तो समस्त क्रिया-कलाप ठीक चलता है। यह जब बढ़ी हुई मात्रा में होता है, तो उसे बलिष्ठता, समर्थता, तेजस्विता, मनोबल, ओजस्, प्रतिभा आदि में देखा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति ही 'महाप्राण' कहलाते हैं, वे अपना प्राण असंख्यों में फूँकने और विश्व का मार्ग दर्शन कर सकने में भी समर्थ होते हैं। 'प्राण' को ही जीवन का आधार माना जाना चाहिए। शरीरशास्त्री जिस शक्ति स्रोत की व्याख्या 'नाड़ी शक्ति' (Nerve-Energy) कहकर समाप्त कर देते हैं, वह वस्तुतः प्राण तत्त्व की एक लघु तरंग मात्र ही है।

मानव शरीर में विद्यमान प्राणशक्ति से ही समस्त अंतः-संचालन (Afferent) और नाड़ी समूह (Nervous System) अनुप्राणित हैं। मस्तिष्क की कल्पना, धारणा, इच्छा, निर्णय, नियंत्रण, स्मृति, प्रज्ञा आदि समस्त शक्तियों का उत्पादन-अभिवर्धन तथा संचालन का मर्म जानना हो, तो कुंडलिनी विद्या का आश्रय लेना चाहिए। अचेतन मन अजस्र संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य कहा जाता है और उसे योग की समस्त सिद्धियों का केंद्र बिंदु माना जाता है।

विश्वव्यापी प्राण जब शरीर में प्रवेश करता है, तो उसका प्रवेश दो छिद्रों के माध्यम से होता है, जिन्हें 'मूलाधार' और 'सहस्रार' कहते हैं। सूर्य की शक्ति जब पृथ्वी पर आती है, तो उसके माध्यम दोनों ध्रुव होते हैं। विद्युत् भंडार को जब छोटे यंत्रों में लाना होता है, तब भी प्लग के दो छेदों में दो हुक फँसाने

पड़ते हैं। विश्व विद्युत्—महाप्राण को शरीर विद्युत्—कायप्राण में अवतरित करने के लिए भी उपरोक्त मूलाधार और सहस्रार छिद्र ही माध्यम होते हैं। कुंडलिनी इस शक्ति-संतुलन का नाम है। आत्म-विज्ञानी प्राण की मात्रा आवश्यकतानुसार घटाने-बढ़ाने के लिए इन्हीं छिद्रों का प्रयोग करता है। इस विज्ञान के समझने से जीवन तत्त्व के मूल उद्गम का पता ही नहीं लगता, वरन् उसकी मात्रा में न्यूनाधिक परिवर्तन करके अभीष्ट संतुलन बनाने का भी लाभ मिलता है।

"इस संसार में दिखाई पड़ने वाली और न दीखने वाली जितनी भी वस्तुएँ तथा शक्तियाँ हैं, उन सबके सम्पूर्ण योग का नाम 'प्राण' है। इसे विश्व की अति सूक्ष्म और अति उत्कृष्ट सत्ता (Vital Energy) कह सकते हैं। श्वास-प्रश्वास क्रिया तो उसकी वाहन मात्र है, जिस पर सवार होकर वह हमारे समस्त अवयवों और क्रिया-कलापों तक आती-जाती और उन्हें समर्थ, व्यवस्थित एवं नियंत्रित बनाए रहती है। भौतिक जगत् में संव्याप्त गर्मी—रोशनी, बिजली, चुंबक आदि को उसी के प्रतिस्फुरण समझा जा सकता है। वह बाह्य और अंतर्मन से संबोधित होकर इच्छा के रूप में, इच्छा से भावना के रूप में, भावना से आत्मा के रूप में परिणत होती हुई अंततः परमात्मा से जा मिलने वाली इस विश्व की सर्वसमर्थ सत्ता है। एक प्रकार से उसे परमात्मा का कर्तव्य का माध्यम या उपकरण ही माना जाना चाहिए।"

❑ ❑

प्राण की अजस्र धारा हमारे लिए

यह शरीर विद्युत् जिसके शरीर में जितनी अधिक मात्रा में संचित होती है, वह उतना ही अधिक तेजस्वी, सुंदर, सक्रिय, स्फूर्तिवान्, ओजस्वी, प्रतिभावान् दिखाई पड़ता है। शरीर की रोग निरोधक शक्ति एवं मस्तिष्क की सूक्ष्मदर्शिता, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता इसी विद्युत् पर निर्भर है।

स्वभाव की मिठास को आमतौर से आकर्षण कहा जाता है। अंगों की कोमलता में भी जिस सौंदर्य की झाँकी होती है, उनमें भी शरीर शास्त्रीय दृष्टि से विद्युत् कंपन की ही विशेष थिरकन समाई रहती है। किसी की आँखों में, किसी के होठों में, किसी की ठोड़ी आदि में विशेष मनमोहकता रहती है। इसका तात्त्विक विश्लेषण करने पर मानवी शरीर की बिजली ही लहराती सिद्ध होती है। इसमें जब कमी होने लगती है, तो शरीर रूखा, नीरस, कुरूप, शिथिल, निस्तेज, दिखाई पड़ने लगता है। आँखों में दीनता, चेहरे पर उदासी छाई रहती है, इस विघटन को देखकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि तेजस्विता की तरंगें शिथिल हो गईं और अभीष्ट ऊर्जा का अभाव हो गया।

शरीर में रक्त-मांस की वृद्धि के लिए उपाय किये जाते हैं, पर इस तथ्य पर पहुँचने में भूल की जाती है कि आग मंदी पड़ जाने पर पकने और पचने की क्रिया ही नहीं, उमंग और उत्कर्ष का प्रत्येक पक्ष शिथिल पड़ जाता है। यह अभाव समस्त शरीर की दुर्बलता अथवा अंग विशेष की अशक्तता के रूप में प्रकट होकर मनुष्य को रुग्ण बनाता है। बीमारों में रोग-कीटाणुओं की खोज की जाती है। इनकी उपस्थिति कारण नहीं, लक्षण मात्र है। जिस तरह निर्जीव—प्राणरहित मांस में कीड़े पड़ जाते हैं, उसी प्रकार देह में विद्युत् की अभीष्ट मात्रा में जहाँ कमी आई, वहाँ

उस अर्धमृत काया पर तुच्छ से कीटाणु अपना अड्डा जमाते और वंश बढ़ाते चले जाते हैं। यदि शरीर में गर्मी की, बिजली की आवश्यक मात्रा विद्यमान हो, तो उसके प्रचंड तेज में किसी विजातीय द्रव को, रोग-कीटक को जीवित रहने का अवसर नहीं रहता। बाहर के आक्रमणकारी कीटाणु उसमें प्रवेश करते ही जल-भुनकर नष्ट हो जाते हैं, किंतु प्राण की विशेष मात्रा विद्यमान रहने पर असाधारण कार्य संभव होते हैं।

शरीर विज्ञानियों का मत है कि सामान्यतया किसी मनुष्य की मृत्यु जब घोषित की जाती है, तब भी उसकी पूर्ण मृत्यु नहीं होती। रक्त-प्रवाह रुक जाने के बाद प्रायः ५ मिनट के पश्चात् हृदय अपना काम करना बंद करता है। इसीलिए कृत्रिम श्वास-प्रश्वास क्रिया करके मृत तुल्य व्यक्ति के हृदय की गति पुनः आरंभ कराने का प्रयत्न किया जाता है। मृत्यु क्रमिक होती है। पहले मस्तिष्क मरता है, फिर अन्य अवयव मरते हैं। सबसे अंत में बाल तथा नाखून मरते हैं। फ्रांस कीं राज्य क्रांति के समय एक विद्रोही का सिर काटा गया। सरकारी रिकार्ड में उल्लेख है कि कटा हुआ सिर बहुत देर तक इस तरह होठ और मुँह चलाता रहा, मानो वह कुछ कह रहा हो। पुराने-जमाने में जब तलवारों से लड़ाइयाँ लड़ी जाती थीं, कटे हुए सिर वाले धड़ उठ खड़े होते थे और हाथ में लगी तलवारों को हवा में चलाते थे। इसी प्रकार कटे हुए सिर भी उछलते देखे गए हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि कानूनी मृत्यु के बाद भी किसी रूप में देर तक जीवन बना रहता है। मरणोपरांत भी क्रिया-कलाप चलते रहने वाली इस सत्ता को आत्मवादी तेजोवलय ही मानते हैं।

वस्त्रों तथा अन्य उपयोग में आने वाली वस्तुओं के बारे में भी यही बात है। भली या बुरी प्रकृति के मनुष्य उन वस्तुओं पर अपना प्रभाव अधिक छोड़ते हैं, जिन्हें वे अधिक रुचिपूर्वक प्रयोग करते हैं। सच्चे साधु-संतों की माला, जनेऊ, खड़ाऊँ, लँगोटी

आदि को कोई व्यक्ति उपहार—आशीर्वाद स्वरूप प्राप्त कर लेते हैं और उनके प्रभाव से देर तक लाभान्वित होते रहते हैं। कलम, घड़ी, अँगूठी, बटन जैसी वस्तुओं का भी ऐसा ही महत्त्व है। भगवान् बुद्ध का एक दाँत लंका में सुरक्षित है। हजरत मुहम्मद साहब का एक बाल काश्मीर की किसी मस्जिद में रखा है। शरीर के साथ जुड़े हुए अवयव, बाल या नाखून अपना महत्त्व रखते हैं। उनके माध्यम से तांत्रिक लोग भले-बुरे प्रयोग करते पाए जाते हैं।

व्यक्तित्व पर तेजोवलय की भारी छाप रहती है। प्रायः यह जन्म-जन्मांतरों के अभ्यास, प्रयास एवं संस्कार के आधार पर विनिर्मित होता है, पर मनुष्य अपनी स्वतंत्र चेतना का उपयोग करके उसे बदल भी सकता है। सामान्य स्तर के लोग इस बने बनाये तेजोवलय के अनुसार अपना स्वभाव और कर्म बनाए रहते हैं, पर मनस्वी लोग अपनी सुदृढ़ संकल्प शक्ति से अपनी अभ्यस्त आंतरिक एवं बाह्य स्थिति में आश्चर्यजनक परिवर्तन भी कर सकते हैं। तब विनिर्मित तेजोवलय में भी वैसा ही परिवर्तन हो जाता है। उसके रंगों में, कंपनों के जाल में इस परिवर्तन का हेर-फेर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। सुकरात कहते हैं—'प्रकृतितः मैं कुख्यात हत्यारा ही हो सकता था, पर मैंने प्रयत्नपूर्वक अपने को बदलने में सफलता प्राप्त की।'

कभी-कभी जलयानों पर समुद्र और जलयान के सम्मिलित प्रभाव से एक शीतल अग्नि उत्पन्न होती है और वह जहाज के मस्तूल, रस्से तथा प्रत्येक भाग पर चमकती दिखाई देती है। यों यह एक प्रकार से विद्युत् ही है, पर हानिरहित है। इससे किसी वस्तु या व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचती। पुराने लोग इसे 'संत एल्यो की अग्नि' कहते थे और समझते थे कि यह जहाज पर कोई सृजनात्मक वरदान बरस रहा है। अब उसे 'जलयान का प्रेत' कहा जाता है। वैज्ञानिक विश्लेषण से यह पता चलता है कि समुद्रीय रासायनिक पदार्थ, लहरों की तरंगें तथा जहाज की

हलचलें सब मिलाकर इस ज्योति का सृजन करते हैं और उस सूक्ष्म उत्पादन से सब मिलाकर जलयान की मजबूती को बल ही मिलता है।

कोहरे भरी रातों में आकाशस्थ तारागणों के इर्द-गिर्द एक धुँधली नीली झलक लिए हुए सफेद रोशनी का तेज मंडल छाया रहता है। कभी-कभी वर्षा ऋतु में चन्द्रमा के चारों ओर भी प्रकाश का एक गोल घेरा दिखाई पड़ता है। विज्ञान की भाषा में इसे 'करोना' कहते हैं। इसका कारण उन प्रकाश-पुंज तारकों के उच्च तनाव का विकिरण अवरोध है। जलबिंदु जब उनके प्रकाश ऊर्जा के क्रमबद्ध विज्ञान में अवरोध उत्पन्न करते हैं, तो इस प्रकार का चमकदार घेरा बन जाता है।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य के चारों ओर एक तेजोवलय छाया रहता है। इसमें विद्युत् कण, चुबकत्व, रेडियो विकिरण, चेतनायुक्त ऊर्जा भरी रहती है। इसे यंत्रों से भी जाना व नापा जा सकता है और समीपवर्ती लोग इसे अपने शरीर और मन पर पड़ने वाले अदृश्य प्रभाव के आधार पर अनुभव कर सकते हैं। कई व्यक्तियों की समीपता अनायास ही बड़ी सुखद, प्रेरणाप्रद और हितकर होती है, कइयों का सान्निध्य अरुचिकर और कष्टकर प्रतीत होता है। इसका वैज्ञानिक कारण व्यक्तियों के शरीर से निकलने वाली इस ऊर्जा का पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण ही होता है। समान प्रकृति के लोगों की ऊर्जा घुलती-मिलती है और सहयोग-प्रोत्साहन प्रदान करती है, पर यदि समीपवर्ती व्यक्तियों की प्रकृति में प्रतिकूलता हो, तो वह ऊर्जा टकराकर वापस लौटेगी और घृणा, अरुचि, अप्रसन्नता, खीज जैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करेगी।

देखा गया है कि कई व्यक्तियों में रास्ता चलते मित्रता हो जाती है। अपरिचित होते हुए भी वे ऐसा अनुभव करते हैं, मानो चिर-परिचित हों और पास आए, बात किए बिना रह ही नहीं सकते। इस अनायास आकर्षण के पीछे पूर्व जन्मों का

संबंध-परिचय भी हो सकता है, पर प्रत्यक्ष कारण दोनों के तेजोवलय की समानता है, जो एक-दूसरे को समीप खींचते रहते हैं। बात की बात में वे परस्पर परिचित, घनिष्ठ और विश्वस्त बन जाते हैं। तर्क के आधार पर यह आकर्षण भावुकता मात्र प्रतीत होता है और ऐसी जल्दबाजी में खतरे की आशंका की जा सकती है, पर तथ्य इतने प्रबल होते हैं कि इन संभावनाओं को निरस्त करते हुए घनिष्ठता उत्पन्न कर ही देते हैं। उसी प्रकार यह भी देखा जाता है कि स्वजन-संबंधी से भी अकारण अरुचि रहती है और उसकी समीपता में कष्टकर अनुभूति ही होती रहती है। ढूँढ़ने पर वैसा कुछ कारण प्रतीत नहीं होता, तो भी ऐसी विषमता बनी ही रहती है। इसमें तेजोवलय के कंपनों की गति में ऐसी असाधारण विपन्नता ही प्रधान अवरोध होती है। इसी को कवियों ने 'प्रकृति मिले मन मिलता है, अनमिल से न मिलाय' की उक्ति के साथ चित्रित किया है। यह 'प्रकृति' मात्र आहार-विहार, वेश-भूषा आदि की समानता पर निर्भर नहीं रहती, वरन् कारण गहरा होता है। इसे तेजोवलय के स्तर की समानता में ही खोजा जा सकता है। अनुशासन के पालन एवं उल्लंघन में प्रायः इसी समानता-असमानता के कारण उत्तेजना, उत्साह मिलता है।

श्मशानों में कई बार धुँधले प्रकाश की गोलियाँ, लहरें अथवा धुँध उड़ती देखी जाती हैं। शरीर के जल जाने पर मृत व्यक्ति का तेजोवलय किसी रूप में विद्यमान बना रह सकता है। कब्र में गाड़े गये व्यक्ति की लाश सड़ जाने पर भी उसका तेजोवलय उस क्षेत्र में उड़ता रह सकता है। इसे कभी-कभी आँखों से देखा जाता है और कभी उधर से निकलने वालों को रोमांच, कँपकँपी, धड़कन के रूप में इसका असुखद अनुभव होता है और वहाँ से जल्दी भाग जाने की इच्छा होती है। ऐसी अनुभूतियाँ भय और आशंका का भी कारण हो सकती हैं, पर कितनी ही बार पूर्ण निर्भय और मरणोत्तर सत्ता को अस्वीकार करने वाले व्यक्ति भी

उस तरह की अनुभूति करते हैं और कहते हैं—उन्हें उस क्षेत्र में कुछ अदृश्य हलचल का आभास होता है।

मरघट में तांत्रिक साधनाएँ करने, कापालिकों द्वारा मृतकों की खोपड़ी को साफ करने, उससे जल पीने जैसी अघोर क्रियाओं के पीछे मृतकों की अवशिष्ट वलय ऊर्जा का उपयोग करने का सिद्धांत ही कार्यान्वित होता है। तंत्र साधना में साधक न केवल अपने ही मनोबल का उपयोग करते हैं, वरन् किन्हीं अन्यों के शरीरों की ऊर्जा का दोहन भी करते हैं। पशुबलि जैसे घृणित कर्म इसी स्तर का लाभ उठाने के लिए किए जाते हैं।

मनुष्य की अंतरंग प्राणशक्ति का बाह्य परिचय उसके तेजोवलय के आकार-विस्तार, सघनता एवं चुंबकीय प्रखरता के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है। संवेदनशील व्यक्ति दूसरों के इस बाहर फैले हुए अंतरंग व्यक्तित्व को आसानी से परख सकते हैं और उसके स्तर का पता लगा सकते हैं। कई बार यह वलय इतना तेजस्वी होता है कि समीपवर्ती क्षेत्र को अपने प्रभाव से भर देता है, इस सीमा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति इसी प्रवाह में बहने लगते हैं।

➢ मनुष्य की तेजस्विता का अंतर्निहित भंडार

मानवीय चुंबकत्व को तेजोवलय के रूप में अनुभव किया जा सकता है। यों समस्त शरीर में उसकी मात्रा रहती है और वह आवाज की तरह दूर क्षेत्र में जाते-जाते हल्का पड़ता जाता है। शरीर से मिलते ही यह विद्युत्‌धारा तीव्र होती है, इसलिए स्पर्श का अधिक प्रभाव पड़ता है। जिनके शरीर में अधिक प्रखर तेजोवलय होता है, उनकी समीपता उतनी ही अधिक प्रभावशाली होती है। यह 'वलय' भला भी हो सकता है और बुरा भी। अपने-अपने ढंग का आक्रमण एवं प्रभाव दोनों में रहता है। इसी

के कारण आमतौर से समीपवर्ती व्यक्ति अथवा पदार्थ प्रभावित होते रहते हैं।

यह तेजोवलय चेहरे पर सबसे अधिक मात्रा में रहता है। देवताओं के चित्रों में उनके चेहरे के आस-पास सूर्य जैसा चमकदार एक घेरा चित्रित किया जाता है, वह इसी अदृश्य तेजोवलय का चित्रण है। आँखों से इसकी लपटें उठती रहती हैं। जीभ भी जब शब्दोच्चार करती है, विशेषतया किसी भावावेश में, तब भी इस तेजस् के स्फुलिंग उड़ते देखे जा सकते हैं। ज्ञानेंद्रियों का जमघट तथा मस्तिष्क का विद्युत् भंडार एक ही जगह है। इसलिए चेहरा सबसे अधिक आकर्षक एवं प्रभावशाली रहता है। मोटेतौर पर चेहरे को देखकर दूसरे लोग बहुत कुछ जानने-समझने में सफल होते हैं। आकृति देखकर मनुष्य की पहचान करने वाले सूक्ष्मदर्शी नाक, कान आदि की बनावट को नहीं, वरन् चेहरे के इर्द-गिर्द उमड़ते-घुमड़ते तेजोवलय को ही परखते हैं और उसी के आधार पर व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व का प्रभाव-परिचय प्राप्त करते हैं।

चेहरे की ही तरह तेजोवलय का एक केंद्र जननेंद्रिय क्षेत्र में छाया रहता है। पर चूँकि उसमें प्रजनन संबंधी आकर्षण अधिक रहता है, इसलिए इस वलय का प्रभाव यौवन आकर्षण उत्पन्न करने वाला होता है। भिन्न लिंग की समीपता ही उस वलय में अधिक उभार करती है। समलिंग की समीपता में वह तेजस् उत्तेजित नहीं होता। इन अड़चनों को देखते हुए ही कटि क्षेत्र को ढका रखा जाता है। विद्युत् प्रवाह की दृष्टि से वहाँ भी चेहरे की अपेक्षा मात्रा कम नहीं होती, पर उपरोक्त बाधाओं ने उसे सीमित प्रयोजन के लिए ही उपयोगी रहने दिया है। दांपत्य स्तर पर भी उसका लाभ मिलता है। इस असुविधा के कारण ही उसे ढका हुआ, केवल प्रणय प्रयोजन के लिए ही सीमित-अवरुद्ध किया गया है। यदि यह दोष न होता, तो यह तेजोवलय चेहरे पर छाए रहने

वाले तेजोवलय से न्यून नहीं—अधिक ही प्रभावशाली सिद्ध होता। चेहरे का तेजोवलय इस प्रकार के बंधन-प्रतिबंध से मुक्त है। वह जैसा भी भला-बुरा होगा, अपने निकटवर्ती क्षेत्र को, संपर्क में आने वाले व्यक्तियों तथा स्पर्श व्यवहार में आने वाले पदार्थों को प्रभावित करता है। जिस प्रकार जीवाणु एक से दूसरे शरीर में प्रवेश करते रहते हैं, उसी प्रकार यह तेजोवलय विद्युत् मंडल समीपवर्ती क्षेत्र में अपनी मानसिक एवं आत्मिक स्थिति का प्रकाश-प्रभाव फैलाता रहता है।

चुंबक का स्पर्श करने से साधारण लोहे में भी चुंबक की विशेषता उत्पन्न हो जाती है। प्रचंड प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्वों में भी ऐसी ही मानवी विद्युत् भरी पड़ी रहती है। उनके परामर्श, ज्ञान, सहयोग का भी समीपवर्ती लोगों को लाभ मिलता है; पर सबसे बड़ा लाभ उस तेजोवलय का होता है, जो अपनी शक्तिशाली क्षमता को निरंतर निःसृत करता रहता है और जो भी उस संपर्क-सान्निध्य की लपेट में आता है, उसे देखते-देखते बदलने में, प्रभावित करने में सफल होता है। महामानवों के दर्शन, चरण स्पर्श, आशीर्वचन, दृष्टिपात में जो सत्परिणाम विद्यमान रहते हैं, उसमें उनका प्रकाश पुंज—तेजोवलय ही काम करता रहता है। दूसरे शब्दों में इस सूक्ष्म सत्ता को ही अदृश्य व्यक्तित्व कह सकते हैं। दृश्य व्यक्तित्व शरीर के रंग, रूप, सुडौलता, अंगों की बनावट आदि पर निर्भर रहता है, पर अदृश्य व्यक्तित्व पर इस दृश्य स्थिति का कोई प्रभाव नहीं होता है। कोई काला, कुरूप, दुर्बल, वृद्ध व्यक्ति भी अत्यंत तेजस्वी और प्रतिभा का धनी हो सकता है, जबकि वह बाहर से उपहासास्पद ही लगेगा। इसके विपरीत सुंदर और आकर्षक नवयौवनसंपन्न काया का व्यक्ति हेय और हीन स्तर का हो सकता है। आँखों को आरंभिक दर्शन में काय-कलेवर के अनुरूप किसी की वस्तुस्थिति समझने में भ्रम हो सकता है, पर जैसे ही उसकी यथार्थता अनुभव की जायेगी, वह

भ्रम दूर हो जायेगा और वास्तविक व्यक्तित्व के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाने लगेगा।

साधारणतया रंग-रूप का आकर्षण हर किसी को मुग्ध-मोहित करता है, पर यदि तेजोवलय तदनुरूप न हुआ तो कुछ ही समय में वह मूल्यांकन बदल जाता है। रूपवान् काया में विषधर सर्प जैसी विद्रूपता प्रकट हो जाती है और कुरूपों को अष्टावक्र, सुकरात, गांधी की तरह सिर आँखों पर बिठाया जाने लगता है। शरीर की कुरूपता सज्जा-साधना से एक हद तक छिपाई भी जा सकती है, पर तेजोवलय के सूक्ष्म शरीर पर किसी भी प्रकार पर्दा नहीं डाला जा सकता। जिनका अंतःकरण थोड़ा जाग्रत् हो चला है और किसी की भीतरी स्थिति समझने-देखने योग्य जिनकी सूक्ष्म दृष्टि जाग्रत् हो गयी है, वे रंग-रूप की उपेक्षा करके तेजोवलय में संव्याप्त सुंदरता एवं कुरूपता को देख सकते हैं और उसी के अनुरूप किसी के प्रति श्रद्धालु-अश्रद्धालु होने की आवश्यकता अनुभव कर सकते हैं। वस्त्र पहनने का कारण शरीर को सर्दी-गर्मी से बचाना या शोभा बढ़ाना भी हो सकता है, पर मूल कारण तेजोवलय पर आवरण आच्छादित किए रहना ही है। भीतर की शक्ति बाहर निकलकर बिखरने न पाए, इसके लिए वस्त्रों का आवरण चढ़ाया जाता है। नग्न शरीर रहने वाले साधु-संन्यासी भी शरीर पर भस्म या मिट्टी का आवरण चढ़ाये रहते हैं। पूर्ण नग्न शरीर रखना असभ्य आचरण माना जाता है। इसका कारण सामाजिक मान्यता भी है, पर आत्मिक कारण यह है कि कोई शरीर नग्न होने की दशा में अपनी शक्ति तरंगें बड़ी मात्रा में बाहर बिखेरता रहेगा, साथ ही दूसरों के भले-बुरे प्रबल प्रभावों से अपने को बचा भी न सकेगा। नग्न शरीर पर धूप का प्रभाव अधिक पड़ता है, उसी प्रकार दूसरों का चुंबकत्व भी निर्वस्त्र लोगों को अधिक प्रभावित कर सकता है। रेशम एवं ऊन में शारीरिक विद्युत् पर आवरण डाले रहने की क्षमता अधिक

होती है, इसलिए प्रायः पुरश्चरणपरक प्रबल साधना प्रयोजनों में सूती वस्त्रों की अपेक्षा ऊनी या रेशमी कपड़ों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यहाँ एक बात और नोट कर ली जानी चाहिए कि वध करने के उपरांत भेड़ों की उतारी हुई ऊन अथवा कीड़ों को उबालकर उन्हें मार डालने के उपरांत पाया जाने वाला रेशम आत्मिक प्रयोजनों में काम आने लायक नहीं रह जाता। वध के समय निकली हुई चीत्कार उनकी सूक्ष्म स्थिति को आसुरी प्रकृति का बना देता है। शरीरगत विद्युत् के आवागमन में प्रतिरोध उत्पन्न करने की क्षमता तो ऐसे ऊन या रेशम में हो सकती है, पर उनसे उच्च आध्यात्मिक प्रयोजनों में तो उल्टी बाधा ही पड़ेगी। उससे तो धुला हुआ सूती वस्त्र ही अच्छा है।

भारत के अध्यात्मवेत्ता किसी समय इस दिशा में बहुत बड़ी सेवा करने और सफलता प्राप्त करने में कृतकार्य हो चुके हैं। बुद्ध की प्रचंड विचारधारा से अपने समय में लगभग ढाई लाख व्यक्तियों ने अपनी विलासी एवं भौतिक महत्त्वाकांक्षी गतिविधियाँ छोड़कर उस कष्टकर प्रयोजन को अपनाने के लिए खुशी-खुशी कदम बढ़ाया, जो प्रचंड मानवीय विद्युत् से सुसंपन्न बुद्ध को अभीष्ट था। भगवान् राम ने रीछ-वानरों को ऐसे कार्य में जुट जाने के लिए भावावेश में संलग्न कर दिया, जिससे किसी लाभ की आशा तो थी नहीं, उलटे जीवन-संकट स्पष्ट था। भगवान् कृष्ण ने महाभारत की भूमिका रची और उसके लिए मनोभूमियाँ उत्तेजित कीं। पांडव उस तरह की आवश्यकता अनुभव नहीं कर रहे थे और न अर्जुन की उस संग्राम में रुचि थी, तो भी अभीष्ट प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए मानसिक क्षमता के धनी कृष्ण ने उस तरह की उत्तेजनात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं। गोपियों के मन में सरस भावाभिव्यंजनाएँ उत्पन्न करने का सूत्र-संचालन कृष्ण ही कर रहे थे।

ईसा मसीह, मुहम्मद, जरथुस्त आदि धार्मिक क्षेत्र के मनस्वी ही थे, जिन्होंने लोगों को अभीष्ट पथ पर चलने के लिए विवश किया। उपदेशक लोग आकर्षक प्रवचन देते रहते हैं, पर उनकी कला की प्रशंसा करने वाले भी उस उपदेश पर चलने को तैयार नहीं होते। इसमें उनके प्रतिपाद्य विषय का दोष नहीं, उस मनोबल की कमी ही कारण है, जिसके बिना सुनने वालों के मस्तिष्क में हलचल उत्पन्न किया जा सकना संभव न हो सका। नारद जी जैसे मनस्वी ही, अपने स्वल्प परामर्श से लोगों की जीवनधारा बदल सकते थे। वाल्मीकि, ध्रुव, प्रहलाद, सुकन्या आदि कितने ही आदर्शवादी उन्हीं की प्रेरणा भरी प्रकाश-किरण पाकर आगे बढ़े थे।

समर्थ गुरु रामदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गुरु गोविंद सिंह, दयानंद, कबीर आदि मनस्वी महामानवों ने अपने समय के लोगों को उपयोगी प्रेरणाएँ दी हैं और अभीष्ट पथ पर चलने के लिए साहस उत्पन्न किया है। गांधीजी की प्रेरणा से स्वतंत्रता संग्राम में अगणित व्यक्ति त्याग, बलिदान करने के लिए किस उत्साह के साथ आगे आए, यह पिछले ही दिनों की घटना है।

शक्ति इसी स्तर की प्रक्रिया है, जिसमें मानुषी विद्युत् से सुसंपन्न व्यक्ति का तेजस् दूसरे अल्प तेजस् व्यक्तियों में प्रवेश करके उन्हें देखते-देखते समर्थ बनाकर रख देती है। दीपक से दीपक जलने का, पारस स्पर्श से लोहा के सोना होने का उदाहरण इसी प्रकार के संदर्भ में दिया जाता है।

इस ओजस्, ब्रह्मवर्चस्, आत्मबल का ही एक छोटा स्वरूप मानवी विद्युत् है। व्यक्तित्व की प्रखरता होने पर यह प्राणशक्ति बनकर निखरती-उभरती है। ऐसे व्यक्ति बाहर से प्रभावशाली भले ही दिखाई न पड़ें, पर उनका आंतरिक तेजस् असाधारण होता है। इस शक्ति को धन, वैभव, विद्या, शरीर बल, शस्त्र बल आदि

भौतिक साधनों की तुलना में असंख्य गुना महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

इसी ओजस् धारा के अनेक शक्ति संस्थान सूक्ष्म शरीर में भरे पड़े हैं। वे यदि जाग्रत् किये जा सकें, जो अपने भीतर से ही देवता प्रकट होते देखे जा सकते हैं।

कुछ समय पूर्व बंबई के एक विद्वान् बी० जे० रेले ने एक पुस्तक लिखी थी, 'दी वैदिक गार्ड्स एस फिंगर्स ऑफ बायोलोजी', उसमें उन्होंने सिद्ध किया था कि वेदों में वर्णित आदित्य, वरुण, अग्नि, मरुत, मित्र, अश्विन, रुद्र आदि मस्तिष्क के स्थान विशेष में सन्निहित दिव्य शक्तियाँ हैं, जिन्हें जाग्रत् करके विशिष्ट क्षमता संपन्न बनाया जा सकता है।

ग्रांट मेडीकल कॉलेज के एनाटामी प्राध्यापक वाई० जी० नाडगिर और एडगर के० जे० टॉमस ने संयुक्त रूप में पुस्तक की भूमिका लिखते हुए कहा था कि, वैदिक ऋषियों के शरीरशास्त्र संबंधी गहन ज्ञान पर अचंभा होता है, कि उस साधनहीन समय में किस प्रकार उन्होंने इतनी गहरी जानकारियाँ प्राप्त की होंगी ? आँख की सीप से ऊपर के मस्तिष्क का भाग वृहद् मस्तिष्क कहलाता है। यही 'सेरिब्रम' ब्रह्म चेतना शक्ति का केंद्र है। इंद्र और सविता यहीं निवास करते हैं। नाक की सीध में सिर के पीछे वाला भाग 'सेरिबेलम' अनुमस्तिष्क रुद्र देवता का कार्य क्षेत्र है। मस्तिष्क का ऊपरी भाग रोदसी, मध्य भाग अंतरिक्ष और निम्न भाग पृथ्वी बतलाया गया है। रोदसी से दिव्य चेतना का प्रवाह, अंतरिक्ष में ग्रह-नक्षत्रों वाला ब्रह्मांड और पृथ्वी में अपने लोक में काम कर रही भौतिक शक्तियों का सूत्र संबंध जुड़ा रहता है। सप्तधार, सोम, अग्नि, स्वर्ग द्वार, द्रोण कलश एवं अश्विनी शक्तियों का संबंध रोदसी क्षेत्र से है।

अग्नि से नीचे वाले भाग को स्वर्ग द्वार और उससे नीचे वाले भाग को द्रोण कलश कहा गया है, जहाँ से सप्त

सरिताएँ—सात नदियाँ बहती हैं। द्रोण कलश में सोम रस भरा रहता है, जिसके आधार पर स्नायु केंद्रों की शक्ति प्राप्त होती है। मेरु-रज्जुओं के साथ बँधे हुए दो ग्रंथि गुच्छक अश्विनीकुमार बताए गए हैं। मस्तिष्क की परिधि को घेरे हुए एक विशेष द्रव संपूर्ण मस्तिष्क को चेतना प्रदान करता है, इसी को वरुण कहते हैं, इसी केंद्र में अग्नि देवता का ज्ञानकोष है। मस्तिष्क के पिछले भाग में अवस्थित "टेंपोलर लीव" प्राचीनकाल का शंख पालि है। इसके नीचे की पीयूष ग्रंथियाँ, जिन्हें मेडुला भी कहते हैं, अश्वमेध यज्ञ की वेदी है। अश्वमेध अर्थात् इंद्रिय परिष्कार, इसके लिए पीयूष ग्रंथि वाला क्षेत्र ही उत्तरदायी है।

सुषुप्ति को जाग्रति में परिणत करने के लिए ही अपने आप को तपाना पड़ता है। तपश्चर्या के फलस्वरूप सिद्धियाँ मिलने के जो प्रमाण उदाहरण मिलते हैं, उनके पीछे प्राणतत्त्व का विकास और आंतरिक परिष्कार का लक्ष्य ही सन्निहित रहता है। बाहर से कोई देवता हमारी सहायता करने के लिए दौड़ा नहीं आता, वरन् तप साधना से उत्पन्न आंतरिक प्रखरता ही देव शक्ति बनकर हमें आत्म संपदा से ओत-प्रोत करती है। यह संपत्ति जिनके पास है, उसे सुखी और समुन्नत रहने तथा दूसरों को महत्त्वपूर्ण अनुदान देते रहने का श्रेय मिलता है।

शरीर, मन और अंतःकरण में काम करने वाली विद्युत्-शक्ति के अभिवर्धन और सदुपयोग की विधान-प्रक्रिया का नाम ही योग-साधना है। विभिन्न प्रकार के तप-साधन इसी प्रयोजन के लिए किये जाते हैं। प्राणवान् व्यक्तियों के समीप रहकर उनके विद्युत्-प्रवाह का लाभ उसी प्रकार उठाया जा सकता है, जैसा कि चंदन वृक्ष के समीप उगे हुए झाड़-झंखाड़ भी सुगंधियुक्त होने का लाभ उठाते हैं। मौन, एकांत सेवन और ब्रह्मचर्य जैसी साधनाएँ इसीलिए हैं कि वह विद्युत् भंडार निरर्थक कार्यों में खर्च न होकर संग्रहित रखा जा सके और उसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों में खर्च

किया जा सके। महान् व्यक्तित्वों का सान्निध्य-संपर्क अपने आप में एक बड़ा लाभ है। बिना सत्संग और परामर्श के भी ऐसा संपर्क स्वल्प प्राण व्यक्तियों के लिए अमृत वर्षा जैसा अति महत्त्वपूर्ण अनुदान प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि आग और बिजली के संपर्क में आने वाली वस्तुओं में यदि ग्रहण करने की शक्ति हो, तो वे भी उसी स्तर की बन जाती हैं।

प्रयत्न करने पर यही चेतन चुंबकत्व के, आत्मबल के रूप में विकसित हो सकता है और आगे चलकर योग-साधना की सिद्धियों और देव अनुग्रह से मिलने वाली विभूतियों के रूप में सामने आता है। तपश्चर्या, तितीक्षा और कष्टसाध्य साधना पथ पर दूर तक चल सकना, इस आत्मबल के सहारे ही संभव होता है। विकसित स्तर का यही आत्मतेजस् सूक्ष्म जगत् में काम करने वाली दिव्य शक्तियों को खींच लाता है और उस व्यक्ति की हथेली पर लाकर रख देता है।

➢ गायत्री उपासना—प्रकाश की साधना

अध्यात्म विज्ञान में स्थान-स्थान पर प्रकाश की साधना और प्रकाश की याचना की चर्चा मिलती है। यह प्रकाश बल्ब-बत्ती अथवा सूर्य, चंद्र आदि से निकलने वाला उजाला नहीं, वरन् वह परम ज्योति है, जो इस विश्व में चेतना का आलोक बनकर जगमगा रही है। गायत्री का उपास्य सविता देवता इसी परम ज्योति को कहते हैं। इसका अस्तित्व ऋतंभरा प्रज्ञा के रूप में प्रत्यक्ष और कण-कण में संव्याप्त जीवन ज्योति के रूप में प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर देख सकता है। इसकी जितनी मात्रा जिसके भीतर विद्यमान हो, समझना चाहिए कि उसमें उतना ही अधिक ईश्वरीय अंश आलोकित हो रहा है।

मस्तिष्क के मध्य भाग से प्रकाश कणों का एक फव्वारा-सा फूटता रहता है। उसकी उछलती हुई तरंगें एक वृत्त बनाती हैं

और फिर अपने मूल उद्‌गम में लौट जाती हैं। यह रेडियो प्रसारण और संग्रहण जैसी प्रक्रिया है। ब्रह्मरंध्र से छूटने वाली ऊर्जा अपने भीतर छिपी हुई भाव स्थिति को विश्व-ब्रह्मांड में ईथर कंपनों द्वारा प्रवाहित करती रहती है। इस प्रकार मनुष्य अपनी चेतना का परिचय और प्रभाव समस्त संसार में फेंकता रहता है। फुहारे की लौटती हुई धाराएँ अपने साथ विश्वव्यापी असीम ज्ञान की नवीनतम घटनात्मक तथा भावनात्मक जानकारियाँ लेकर लौटती हैं। यदि उन्हें ठीक तरह समझा जा सके, ग्रहण किया जा सके तो कोई भी व्यक्ति भूतकालीन और वर्तमान काल की अत्यंत सुविस्तृत और महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त कर सकता है। व्यक्ति में प्रवाह ग्रहण करने की और प्रसारित करने की जो क्षमता है, उसका माध्यम यह ब्रह्मरंध्र अवस्थित ध्रुव-संस्थान ही है। पृथ्वी पर अन्य ग्रहों का प्रचुर अनुदान आता है तथा उसकी विशेषताएँ अन्यत्र चली जाती हैं। यह आदान-प्रदान का कार्य ध्रुव केंद्रों द्वारा संपन्न होता है। शरीर के भी दो ध्रुव हैं—एक मस्तिष्क, दूसरा जनन गह्वर। चेतनात्मक विकिरण मस्तिष्क से और शक्तिपरक ऊर्जा प्रवाह जनन गह्वर से संबंधित हैं। सूक्ष्म आदान-प्रदान की अति महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया इन्हीं केंद्रों के माध्यम से संचालित होती है।

शारीरिक और मानसिक स्थिति के अनुरूप तेजोवलय की स्थिरता बनती है। यदि स्थिति बदलने लगे तो प्रकाश-पुंज की स्थिति भी बदल जायेगी। इतना ही नहीं, समय-समय पर मनुष्य के बदलते हुए स्वभाव तथा चिंतन स्तर के अनुरूप उसमें सामयिक परिवर्तन होते रहते हैं। सूक्ष्मदर्शी उसकी भिन्नताओं को रंग बदलते हुए परिवर्तनों के रूप में देख सकते हैं। शांति और सज्जनता की मनःस्थिति हल्के नीले रंग में देखी जायेगी। विनोदी, कामुक, सत्तावान्, वैभवशाली, विशुद्ध व्यवहारकुशल स्तर की मनोभूमि पीले रंग की होती है। क्रोधी, अहंकारी, क्रूर, निष्ठुर,

स्वार्थी, हठी और मूर्ख मनुष्य लाल वर्ण के तेजोवलय से घिरे रहते हैं। हरा रंग सृजनात्मक एवं कलात्मक प्रकृति का द्योतक है। गहरा बैंगनी चंचलता और अस्थिर मति का प्रतीक है। धार्मिक, ईश्वर भक्त और सदाचारी व्यक्तियों की आभा केशरिया रंग की होती है। इसी प्रकार विभिन्न रंगों का मिश्रण मनुष्य के गुण, कर्म, स्वभाव के परिवर्तनों के अनुसार बदलता रहता है। यह तेजोवलय सदा स्थिर नहीं रहता। बदलती हुई मनोवृत्ति प्रकाश पुंज के रंगों में परिवर्तन कर देती है। यह रंग स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं। मनोभूमि में होने वाले परिवर्तन, शरीर से निःसृत होते रहने वाले ऊर्जा कंपनों की घटती-बढ़ती संख्या के आधार पर आँखों को अनुभव होते हैं। वैज्ञानिक इन्हें 'फ्रीक्वेन्सी ऑफ दी वेव्स' कहते हैं।

दिव्य दर्शन (क्लेयरवॉयन्स), दिव्य अनुभव (साइकोमैट्री), प्रभाव प्रेषण (टेलीपैथी), संकल्प प्रयोग (सजेशन) जैसे प्रयोग थोड़ी आत्म-शक्ति विकसित होते ही आसानी से किए जा सकते हैं। इन विद्याओं पर पिछले दिनों से काफी शोध कार्य होता चला आ रहा है और उन प्रयासों के फलस्वरूप उपयोगी निष्कर्ष सामने आए हैं। परा मनोविज्ञान, अतींद्रिय विज्ञान, मेटाफिजिक्स जैसी चेतनात्मक विद्याएँ भी अब रेडियो विज्ञान तथा इलेक्ट्रोनिक्स की ही तरह विकसित हो रही हैं। अचेतन मन की सामर्थ्य के संबंध में जैसे-जैसे रहस्यमय जानकारियों के पर्त खुलते हैं, वैसे-वैसे स्पष्ट होता जाता है कि नरपशु लगने वाला मनुष्य वस्तुतः असीम और अनंत क्षमताओं का भंडार है, कठिनाई इतनी भर है कि उसकी अधिकांश विकृतियाँ प्रसुप्त-अविज्ञात-स्थिति में पड़ी हैं।

प्रकाश रश्मियों की लंबाई एक इंच के सोलह सौ तीस लाखवें हिस्से के बराबर होती है। रेडियो पर सुनी जाने वाली ध्वनि-तरंगों की गति एक सेकंड में एक लाख, छियासी हजार मील की होती है, वे एक सेकंड में सारी धरती की सात परिक्रमा

कर लेती हैं। शब्द और प्रकाश की तरंगों का आकार एवं प्रवाह इतना सूक्ष्म एवं गतिशील है कि उन्हें बिना सूक्ष्म यंत्रों की सहायता के हमारी इंद्रियाँ अनुभव नहीं कर सकती हैं।

डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने 'अणु और आत्मा' ग्रंथ में स्वीकार किया है कि प्रकाश अणु न केवल मनुष्यों में वरन् अन्य जीवधारियों, वृक्ष, वनस्पति, औषधि आदि में भी होती है। यह प्रकाश अणु ही जीवधारी के यथार्थ शरीरों का निर्माण करते हैं। खनिज पदार्थों से बना मनुष्य या जीवों का शरीर तो तभी तक स्थिर रहता है, जब तक यह प्रकाश अणु शरीर में रहते हैं। इन प्रकाश अणुओं के हटते ही स्थूल शरीर बेकार हो जाता है, फिर उसे जलाते या गाड़ते ही बनता है। खुला छोड़ देने पर तो उसकी सड़ांध से उसके पास एक क्षण भी ठहरना कठिन हो जाता है।

स्वभाव, संस्कार, इच्छाएँ, क्रिया-शक्ति यह सब इन प्रकाश अणुओं का ही खेल है। हम सब जानते हैं कि प्रकाश का एक अणु (फोटोन) भी कई रंगों के अणुओं से मिलकर बना होता है। मनुष्य शरीर की प्रकाश आभा भी कई रंगों से बनी होती है। डॉ० जे० सी० ट्रस्ट ने अनेक रोगियों, अपराधियों तथा सामान्य व श्रेष्ठ व्यक्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण करके बताया है कि जो मनुष्य जितना श्रेष्ठ और अच्छे गुणों वाला होता है, उसके प्रकाश अणु दिव्य तेज और आभा वाले होते हैं, जबकि अपराधी और रोगी व्यक्तियों के प्रकाश अणु क्षीण और अंधकारपूर्ण होते हैं। उन्होंने बहुत से मनुष्यों के काले धब्बों को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उनके रोगी या अपराधी होने की बात को बताकर लोगों को स्वीकार करा दिया था कि सचमुच रोग और अपराधी वृत्तियाँ काले रंग के अणुओं की उपस्थिति का प्रतिफल होते हैं। मनुष्य अपने स्वभाव में चाहते हुए भी तब तक परिवर्तन नहीं कर सकता, जब तक यह दूषित प्रकाश अणु अपने अंदर विद्यमान बने रहते हैं।

यही नहीं जन्म-जन्मांतरों तक खराब प्रकाश अणुओं की यह उपस्थिति मनुष्य से बलात् दुष्कर्म कराती रहती है, इस तरह मनुष्य पतन के खड्ढे में बार-बार गिरता और अपनी आत्मा को दुःखी बनाता रहता है। जब तक यह अणु नहीं बदलते, न निष्क्रिय होते, तब तक मनुष्य किसी भी परिस्थिति में अपनी दशा नहीं सुधार पाता।

यह तो है कि अपने प्रकाश अणुओं में यदि तीव्रता है, तो उससे दूसरों को आकस्मिक सहायता दी जा सकती है, रोग दूर किये जा सकते हैं। खराब विचार वालों को कुछ देर के लिए अच्छे संत स्वभाव में बदला जा सकता है। महर्षि नारद के संपर्क में आते ही डाकू वाल्मीकि के प्रकाश अणुओं में तीव्र झटका लगा और वह अपने आपको परिवर्तित कर डालने को विवश हुआ। भगवान् बुद्ध के इन प्रकाश-अणुओं से निकलने वाली विद्युत् विस्तार की सीमा में आते ही डाकू अंगुलिमाल की विचारधाराएँ पलट गई थीं। ऋषियों के आश्रमों में गाय और शेर एक घाट पर पानी पी आते थे, वह इन प्रकाश-अणुओं की ही तीव्रता के कारण होता था। उस वातावरण के निकलते ही व्यक्तित्वगत प्रकाश अणु फिर बलवान् हो उठने से लोग पुनः दुष्कर्म करने लगते हैं। इसलिए किसी को आत्म-शक्ति या अपना प्राण देने की अपेक्षा भारतीय आचार्यों ने एक पद्धति का प्रसार किया था, जिनमें इन प्रकाश-अणुओं का विकास कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार कर सकता था। देव उपासना उसी का नाम है।

उपासना एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसमें हम अपने भीतर के काले, मटमैले और पापाचरण को प्रोत्साहन देने वाले प्रकाश अणुओं को दिव्य, तेजस्वी, सदाचरण, शांति एवं प्रसन्नता की वृद्धि करने वाले मानव-अणुओं में परिवर्तित करते हैं। विकास की इस प्रक्रिया में किसी नैसर्गिक तत्त्व, पिंड या ग्रह-नक्षत्र की साझेदारी होती है—उदाहरण के लिए जब हम गायत्री की उपासना करते हैं

तो हमारे भीतर के दूषित प्रकाश अणुओं को हटाने और उसके स्थान पर दिव्य प्रकाश अणु भर देने का माध्यम 'गायत्री' का देवता सविता अर्थात् सूर्य होता है।

वर्ण, रचना और प्रकाश की दृष्टि से यह मानव-अणु भिन्न-भिन्न स्वभाव के होते हैं। मनुष्य का जो कुछ भी स्वभाव आज दिखाई देता है, वह इन्हीं अणुओं की उपस्थिति के कारण होता है। यदि इस विज्ञान को समझा जा सके तो न केवल अपना जीवन शुद्ध, सात्त्विक, सफल, रोग मुक्त बनाया जा सकता है, वरन् औरों को भी प्रभावित और इन लाभों से लाभान्वित किया जा सकता है। परलोक और सद्गति के आधार भी यह प्रकाश-अणु या मानव-अणु ही हैं।

वस्तुएँ हम प्रकाश की सहायता से देख सकते हैं, किंतु साधारण प्रकाश कणों की सहायता से हम शरीर के कोश (सैल) को देखना चाहें, तो वह इतने सूक्ष्म हैं कि उन्हें देख नहीं सकते। इलेक्ट्रोनों को जब ५०००० वोल्ट आवेश पर सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) में भेजा जाता है, तो उनकी तरंगदैर्ध्य श्वेत प्रकाश कणों की तुलना में १/१०००० भाग सूक्ष्म होती हैं। तब वह हाइड्रोजन के परमाणु का जितना व्यास होता है, उससे भी ४२.४वें हिस्से छोटे परमाणु में भी प्रवेश करके, वहाँ की गतिविधियाँ दिखा सकती हैं। उदाहरण के लिए—यदि मनुष्य की आँख एक इंच घेरे को देख सकती है, तो उससे भी ५०० अंश कम को प्रकाश सूक्ष्मदर्शी और १०००० अंश छोटे भाग को इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी द्वारा देख सकते हैं। इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि मनुष्य शरीर के कोश (सेल्स) का चेतन भाग कितना सूक्ष्म होना चाहिए ? इस तरह के सूक्ष्मदर्शी से जब कोश का निरीक्षण किया गया तो उसमें भी एक टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई दिया। चेतना या महत् तत्त्व इस प्रकार प्रकाश की ही अति सूक्ष्म स्फुरणा है, यह विज्ञान भी मानता है।

भारतीय योगियों ने ब्रह्मरंध्र स्थित जिन षट्चक्रों की खोज की है, सहस्रार कमल उनसे बिल्कुल अलग सर्वप्रभुतासंपन्न है। यह स्थान कनपटियों से दो-दो इंच अंदर भ्रुकुटि से लगभग ढाई या तीन इंच अंदर छोटे से पोले में प्रकाश पुंज के रूप में है। तत्त्वदर्शियों के अनुसार यह स्थान उलटे छाते या कटोरे के समान १७ प्रधान प्रकाश तत्त्वों से बना होता है, देखने में मरकरी लाइट के समान दिखाई देता है। छांदोग्य उपनिषद् में सहस्रार दर्शन की सिद्धि पाँच अक्षरों में इस तरह प्रतिपादित की 'तस्य सर्वेषु कामचारी भवति' अर्थात् सहस्रार प्राप्त कर लेने वाला योगी संपूर्ण भौतिक विज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। यही वह शक्ति केंद्र है, जहाँ से मस्तिष्क शरीर का नियंत्रण करता है और विश्व में जो कुछ भी मानवकृत विलक्षण विज्ञान दिखाई देता है, उनका संपादन करता है।

आत्मा या चेतना जिन अणुओं से अपने को अभिव्यक्त करती है, वह यह प्रकाश अणु ही है, जबकि आत्मा स्वयं उससे भिन्न है। प्रकाश-अणुओं को प्राण, विधायक शक्ति, अग्नि, तेजस् कहना चाहिए। वह जितने शुद्ध, दिव्य, तेजस्वी होंगे, व्यक्ति उतना ही महान्, तेजस्वी, यशस्वी, वीर, साहसी और कलाकार होगा। महापुरुषों के तेजोवलय उसी बात के प्रतीक हैं, जबकि निकृष्ट कोटि के व्यक्तियों में यह अणु अत्यंत शिथिल, मंद और काले होते हैं। हमें चाहिए कि हम इन दूषित प्रकाश अणुओं को दिव्य अणुओं में बदलें और अपने को भी महापुरुषों की श्रेणी में ले जाने का यत्न करें।

ब्रह्म विद्या का उद्गाता 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना में इस दिव्य प्रकाश की याचना करता है। इसी की प्रत्येक जाग्रत् आत्मा को आवश्यकता अनुभव होती है। अस्तु, गायत्री उपासक अपने जप प्रयोजन में इसी ज्योति को अंतः भूमिका में अवतरण करने के लिए सविता देवता का ध्यान करता है।

❑ ❑

गायत्री का देवता—सविता

गायत्री उपासना प्रत्येक भारतीय के लिए अनिवार्य धर्म-कर्तव्य माना गया है। इस उपासना से अर्जित प्राण की मात्रा और उसके व्यावहारिक जीवन के उपयोग के आधार पर ही जाति व्यवस्था तक का निर्धारण करने की परंपरा रही है। ब्राह्मी चेतना की समीपता, धारणा, विकास और ब्रह्मचर्य के विस्तार के कारण एक वर्ग को ब्राह्मण कहा गया है। ब्राह्मण का तात्त्विक अर्थ किसी ब्राह्मण माता-पिता से पैदा हुआ नहीं, अपितु ब्राह्मी-शक्तिसंपन्न व्यक्तित्व माना गया है। कल्पना की गई है कि ऐसे व्यक्तियों में ब्रह्मतेज की बहुलता होती है। यह ब्रह्मतेज और कुछ नहीं, गायत्री उपासना से अर्जित प्रचुर परिमाण में प्राण और उसके फलस्वरूप विकसित हुई मेधा एवं ऋतंभरा प्रज्ञा ही है। यह सुनिश्चित है कि ऐसे व्यक्ति की भावनाएँ अत्यधिक आस्तिक, आस्थावादी, विशाल, उदार और परमार्थपरायण होंगी। वह निरंतर धर्म-कृत्यों द्वारा मनुष्य जाति को ऊर्ध्वगामी चिंतन और आदर्श नेतृत्व की ओर मोड़े रहता है, इसलिए वह समाज का शिरोमणि, श्रद्धास्पद और सम्मानास्पद ठहराया गया। अगली श्रेणियाँ क्रमशः इस तत्त्व की कमी और पार्थिव जीवन के प्रति क्रमशः अधिक आसक्ति के अनुसार निर्धारित हुई हैं, पर तीनों वर्णों के लिए गायत्री उपासना को अनिवार्य माना गया। जो सामाजिक कर्तव्यों का उपेक्षक और घोर सांसारिक हुआ, उसे अंत्यज कहा गया। यह विशुद्ध वैज्ञानिक समाज व्यवस्था थी, आज भले ही उसका स्वरूप विकृत क्यों न हो गया हो।

सामान्यतः यह एकाएक समझ में आने वाली बात नहीं है कि भला मनुष्य की तरह विचारशील चेतन सत्ता बनाने वाली प्राण सत्ता इतनी व्यापक कैसे हो सकती है कि वह वायुमंडल में घुली

हुई हो, किंतु विज्ञान ने इस धारणा को पूरी तरह बुद्धिसंगत ठहरा दिया है।

विद्युत् वैज्ञानिकों की दृष्टि में पृथ्वी एक चुंबकीय शक्ति से भरा-पूरा गोला है। रासायनिक पदार्थों का अस्तित्व अवश्य है, पर उनकी क्षमता, कार्य प्रणाली, परिवर्तन पद्धति, सम्मिश्रण से रूपांतरण की प्रक्रिया जैसी हलचलों के पीछे वह विद्युत् शक्ति ही काम करती है, जिसे प्रत्येक पदार्थ का प्राण कहना चाहिए। यदि इसका अपहरण कर लिया जाए, तो वस्तु अपनी मौलिक विशेषताएँ खो बैठेगी और मृत तुल्य बन जायेगी।

यह तथ्य न केवल वस्तुओं के संबंध में है, अपितु जीवित प्राणियों के संबंध में भी है। जीवन और मृत्यु के बीच अंतर करने वाले तत्त्व को अध्यात्म की भाषा में 'प्राण' कहा जाता है। भौतिक विज्ञानी उसे बिजली की ही एक किस्म मानते हैं।

चुंबक और विद्युत् यों प्रत्यक्षतः दो पृथक्-पृथक् सत्ताएँ हैं, पर वे परस्पर अविच्छिन्न रूप से संबद्ध हैं और समयानुसार एक धारा का दूसरी में परिवर्तन होता रहता है। यदि किसी 'सर्किट' का चुंबकीय क्षेत्र लगातार बदलते रहा जाए, तो बिजली पैदा हो जायेगी। इसी प्रकार लोहे के टुकड़े पर लपेटे हुए तार में से विद्युत्धारा प्रवाहित की जाये, तो वह चुंबकीय शक्तिसंपन्न बन जायेगी।

पृथ्वी के इर्द-गिर्द एक चुंबकीय वातावरण फैला हुआ है। अकेला गुरुत्वाकर्षण कार्य ही नहीं, उससे और भी कितने ही प्रयोजन पूरे होते हैं। यह चुंबकत्व आखिर आता कहाँ से है ? उसका उद्भव स्रोत कहाँ है ? यह पता लगाने वाले इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह कोई बाहरी अनुदान नहीं, वरन् पृथ्वी के गहन अंतराल से निकलने वाला शक्ति प्रवाह है।

हिंदू शास्त्रों में, हिंदू धर्म-ग्रंथों में, जापानी परंपराओं में इस बात का प्रतिपादन है कि सिर उत्तर की ओर और पैर दक्षिण की

ओर करके सोना चाहिए। इसके औचित्य की रीचेन वैक, डूरविले, क्लोरिक, अब्रावस, रेगनाल्ट लिंप्रिस, मूलर आदि अनेक मनःशास्त्रियों ने लंबी खोज की और उसे सही बताया। उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला है कि सही और गहरी नींद के लिए उत्तर की ओर, उत्तरी ध्रुव की ओर, मस्तिष्कीय चुंबक का रुख रहना चाहिए। उत्तर को सिर करके सोना ही ठीक है।

डॉ० मौरिनेस्को ने अपने प्रयोगों में चुंबकीय उपकरण द्वारा तीसरी वेंट्रिकल को धन ध्रुवीय करके कृत्रिम निद्रा उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। मस्तिष्क को अचेतन करने वाले इंजेक्शनों की तरह ही इस प्रयोग का प्रभाव संभव पाया गया। लोहे के पलंगों की अपेक्षा लकड़ी की चारपाई की, लोहे की छड़ी या टीन की चादर से बने मकानों की अपेक्षा लकड़ी, मिट्‌टी या फूँस के पटाव की अधिक उपयोगिता पाई गई। स्वास्थ्य की दृष्टि से उन्हें अधिक उपयुक्त इसलिए पाया गया कि ध्रुवीय विद्युत् संचार का, आकाशीय विद्युत्, फेराडेंडेज का, अनावश्यक संग्रह शरीर में न होने पाए। अनावश्यक संग्रह हर चीज का अहितकर होता है। चुंबकत्व की अनावश्यक मात्रा शरीर और मस्तिष्क में ठूँसने वाले लौह उपकरण इस दृष्टि से यदि अनुपयुक्त माने गये हैं, तो वह तर्कसंगत ही हैं।

पृथ्वी दृश्य रूप से मिट्‌टी, पानी, खनिज, वनस्पति आदि का समन्वय दीखती है या सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वह एक विशाल चुंबक ही प्रतीत होती है। मानव शरीर भी यों रक्त, मांस, अस्थि, त्वचा आदि का समूह दीखता है, पर तात्त्विक दृष्टि से उसे भी एक चलता-फिरता सजीव चुंबक ही कहना चाहिए।

शरीर का प्रत्येक कोषाणु एक विद्युत् इकाई है। जिस तरह पौधे अपने पत्तों द्वारा आकाश से साँस-वायु ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार यह कीटाणु आकाशीय वायुमंडल से 'फ्रीक्वेन्सी' (आवृत्ति)

खींचते हैं। उन्हीं के आधार पर वे अपना वाइब्रेट (कंपन) एवं ऑसीलेट (दोलन) क्रम चलाते हैं।

स्विट्‌जरलैंड के डॉक्टर फिलिप्स आरोलस पेरा सेलसन्स ने कितनी ही बीमारियों का कारण शरीरगत चुंबकत्व की विकृति एवं विश्रृंखलता को सिद्ध किया है। ऐसे रोग, जिनका कारण ठीक से समझ नहीं पा रहे थे और चिकित्सा के अनेक प्रयोगों में असफल रहे थे, डॉ० फिलिप्स ने रुग्णता के मूलों में चुंबक की आवश्यक मात्रा पहुँचाकर उन रोगों से मुक्ति दिलाई।

चुंबकत्व का उत्तरी ध्रुव जीवाणु क्रिया को नियंत्रित करता है और दक्षिणी ध्रुव शक्ति पोषण की आवश्यकता पूरी करता है। अस्वस्थता को इन दो वर्गों में वर्गीकृत करके, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चुंबक की दोनों धाराओं में से किसका, कहाँ और कितना उपयोग किया जाए ?

'मेडीकल वर्ल्ड न्यूज' पत्रिका में शिकागो की बायो-मैगनेटिक रिसर्च फाउंडेशन द्वारा किये गये इस संदर्भ के अनुसंधानों का विस्तृत विवरण छपा है। हंगरी निवासी डॉ० जीन बारबेथी के प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला है कि विषाणुओं से निपटने और कोषाणुओं की अशक्तता को दूर करने में चुंबक के प्रयोग आश्चर्यजनक रीति से सफल हो रहे हैं। इस चिकित्सा पद्धति का स्वतंत्र नामकरण किया गया है, 'बायोमैगनेटिक्स'।

मस्तिष्कीय विकृतियों में साधारणतया औषधियों का उपचार कुछ विशेष कारगर सिद्ध नहीं हुआ है। मूढ़ता, मंद बुद्धि, आवेश, आदतों की जकड़न से लेकर मृगी और उन्माद तक के औषधि उपचार यों होते तो रहते हैं, पर उनका प्रभाव अति स्वल्प ही देखा जाता है। इस क्षेत्र में जो थोड़ी बहुत सफलता मिली है, उसका श्रेय विद्युत् चिकित्सा को ही है। बिजली के झटके देकर अक्सर सनक और उन्माद का इलाज मानसिक अस्पतालों में किया जाता है और उनमें सफलता भी मिलती है। डॉ० के०

हिलाल ने मस्तिष्कीय मूढ़ता और विकारग्रस्तता के लिए चुंबक का प्रयोग करके यह पाया कि इस माध्यम से उन कोषों को अधिक सुविधापूर्वक स्पर्श किया जा सकता है, जो इस प्रकार की रुग्णता के लिए उत्तरदायी है।

➢ जीवन सत्ता का सूर्य से संबंध

शक्ति तत्त्वों के बारे में वैज्ञानिक जानकारियाँ जितनी बढ़ती जा रही हैं, जीवन और प्राण से संबंधित पाश्चात्य मान्यताएँ उतनी ही तेजी से गलती और बदलती जा रही हैं। भारतीय तत्त्व-दर्शन की सत्यता की संभावनाओं में उतनी ही तीव्र वृद्धि होती जा रही है। साधनाओं की, योगाभ्यास की कठिन प्रक्रियाओं को पार कर भारतीय तत्त्वदर्शियों ने जो खोजें की हैं, पाश्चात्य विज्ञान उधर ही बढ़ रहा है। प्रस्तुत लेख में पाश्चात्य विज्ञान द्वारा प्रमाणित मानव-जीवन के विद्युत् चुंबकीय स्वरूप का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे पाठकों को जीवनशक्ति, प्राणतत्त्व की कल्पना का एक नया रूप मिलेगा।

एक बार डॉ० रेगनाल्ट एक रोगी की परिचर्या कर रहे थे। मानसिक तनाव के उस बीमार को वे जब-जब पूर्व-पश्चिम दिशा की ओर सुलाते, 'ऑसिलोमीटर' की सहायता से पता चलता कि कष्ट बढ़ गया है; जबकि चारपाई की दिशा उत्तर-दक्षिण करते तत्काल लाभ मिलता। उन्होंने बताया कि यह घटना इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य का पृथ्वी की चुंबकीय धाराओं से संबंध है। डॉ० रेगनाल्ट की यह खोज एक दिन विकासवाद और मनुष्य के अमीबा जैसे एक कोशीय जीव से उत्पत्ति की बात को खंडित कर दे, तो कुछ आश्चर्य नहीं। प्राण या जीवन शक्ति एक सनातन तत्त्व है, जो विस्फोट के कारण ब्रह्मांड के किसी केंद्र पिंड से बहता हुआ सारे विश्व में नाना प्रकार की रचनाओं के रूप में व्यक्त हो रहा है।

कुत्ते, बिल्लियाँ, बैल एक बार जिस रास्ते को देख लेते हैं, दुबारा उधर कभी जाना हो तो वे उधर से आसानी से लौट आते हैं। इनके संबंध में यह कहा जा सकता है कि वे प्राकृतिक चिह्नों की मदद से यात्राएँ कर लेते होंगे, पर कुछ पक्षी, मछलियाँ हजारों मील लंबी यात्राएँ करती हैं, रात में करती हैं, विभिन्न ऋतुओं में करती हैं, तो भी नियत स्थानों में ही पहुँचती हैं। यह एक आश्चर्य है कि वे बिना किसी दिशा निर्देश के—अंतर्वृत्ति द्वारा किस प्रकार इतनी लंबी यात्राएँ समाप्त कर लेते हैं।

योरोपीय सारस ठंडक के दिनों में योरोप से उड़ते हैं और अफ्रीका जा पहुँचते हैं। काले सिर वाले कौए (हूडेड क्रो), अबाबीलें ६००० मील की यात्राएँ करके एक स्थान से दूसरे स्थानों तक पहुँच जाते हैं। उन्हें कोई दिशा-ज्ञान न होने पर भी वे नियत स्थानों में कैसे पहुँच जाते हैं ? यह आश्चर्य का विषय है। यात्राएँ अधिकांश रात में होती हैं। तारों का कोई ज्ञान नहीं, पक्षियों के बारे में ऐसे भी कोई तथ्य प्रकट नहीं। अतएव आश्चर्य होना स्वाभाविक ही है। जीवशास्त्रियों ने खोज की और पाया कि रहस्य कुछ भी हो, पर एक बात निश्चित रूप से साफ हो जाती है, वह यह कि सभी पक्षी पृथ्वी की चुंबकीय रेखाओं के समानांतर प्रवास करते हैं। प्रयोगों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

एक बार कुछ कौओं को पकड़कर उनके शरीर में कुछ चिह्न बाँध दिये गये। यह कौए उत्तर-पूर्व दिशा में प्रवास के आदी थे। इस बार उन्हें प्रशा (जर्मनी) में पकड़ा गया और वहाँ से ५०० मील पश्चिम ले जाकर कील नहर के किनारे छोड़ा गया। इस बार उन्होंने उड़ान भरी और स्कैंडेनेविया में जाकर उतरे। पहली उड़ान वाले मार्ग से इस मार्ग की तुलना की गयी, तो स्पष्ट ज्ञात हो गया कि यह यात्रा पथ पहले प्रवाह पथ से ठीक समानांतर और पृथ्वी की चुंबकीय रेखा के भी ठीक समानांतर था। ह्वेल और सालोमन मछलियों के प्रयोग से भी यही बात सामने आई

और उससे एक बात पूर्ण स्पष्ट हो गई कि जीव-जंतुओं का जीवन चुंबक-शक्ति से प्रभावित और प्रेरित होता है। इन प्रयोगों में शियर-वाटर (जल में तैरने वाले पक्षी) का उदाहरण सर्वाधिक आश्चर्यजनक था। इसे अटलांटिक महासागर के एक किनारे पर छोड़ा गया। वहाँ से वे ३०५० मील लंबी यात्रा संपन्न कर स्कोरवोम द्वीप के अपने निवास स्थान पर जा पहुँचे।

जीव-जगत् चुंबकीय शक्ति से बहुत अधिक प्रभावित पाया जाता है। टरमाइट कीड़ा अपना घर ठीक पृथ्वी की चुंबकीय रेखाओं के समानांतर बनाता है। पृथ्वी पर कभी चुंबकीय आँधियाँ आती हैं, तो दीमक, चीटियाँ तक विक्षुब्ध हो उठती हैं। यहाँ तक कि जीव कोशों (लाइफ सेल्स) का सूत्र विभाजन भी अपनी प्रारंभिक और मध्य अवस्था में चुंबकीय शक्ति से प्रभावित होता है। क्रोमोसोम हमेशा सेलों के ध्रुवों की ओर ही चलते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि जीवनी-शक्ति विद्युत् चुंबकीय क्षमता से ओत-प्रोत अथवा वैसी ही कोई शक्ति है।

जीव-जंतु ही नहीं मनुष्यों के जीवन भी चुंबकीय शक्ति से प्रभावित होते हैं। १८४५ में डॉ० रीचेनबैक ने अनेक लोगों पर उनके स्वप्नों का अध्ययन कर बताया कि पूर्व की ओर सिर और पश्चिम की ओर पैर करके सोने से बड़ी बेचैनी होती है, जबकि उत्तर-दक्षिण सोने में सुखद अनुभूतियाँ होती हैं। डॉ० क्लैरिक तथा डुरविले के प्रयोग भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं और बताते हैं कि स्वप्नों में दिखाई देने वाले दृश्यों का संबंध कैसे भी हों, चुंबकीय शक्ति से ही है। डॉ० रेगनाल्ट, अंब्रास मुलर, लैंप्रिस आदि ने भी उक्त मान्यताओं की पुष्टि की है।

पृथ्वी की चुंबक शक्ति के बारे में यद्यपि वैज्ञानिक अभी कल्पनाएँ ही करते हैं और अनुमान लगाते हैं कि पृथ्वी के गर्भ में मैगनेटाइट या फेरस ऑक्साइड की विशाल राशि संग्रहीत है, उसी के फलस्वरूप पृथ्वी एक विशाल चुंबक की तरह काम करती

है। मानवीय जीवन या जीव-जंतुओं का चुंबकीय धाराओं से प्रभावित होने का कारण उनके शरीर में लौह युक्त हीमोग्लोबिन का होना बताते हैं, पर वस्तुतः यह दोनों ही कारण सूर्य के प्रकाश कणों की विद्युत् चुंबकमयता के कारण हैं। पृथ्वी को चुंबक बनाने का काम सूर्य करता है। पिछले पृष्ठों में ध्रुव प्रभा के निर्माण की व्याख्या करते समय यह बात प्रकट हुई है। सूर्य के प्रकाश कण (फोटॉन्स) ही जीवन का आधारभूत तथ्य हैं। पुरुष के शरीर में पाया जाने वाला "हीमोग्लोबिन" यह प्राण ही है, जो सूर्य से निःसृत होता है और वायु द्वारा, इच्छा शक्ति द्वारा तथा अन्न द्वारा हमारे शरीरों में पहुँचता रहता है। स्त्री के शरीर में इसे ही "रयि" कहते हैं। विपरीत ध्रुव संचय होने के कारण ही स्त्री-पुरुषों में परस्पर आकर्षण का स्वभाव पाया जाता है।

डॉ० मैरिनेस्को ने तो कई प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि चुंबकत्व हमारे मानसिक संस्थान को भी प्रभावित करते हैं! वे मस्तिष्क की तीसरी वेंट्रिकल में धन विद्युत् प्रविष्ट कर निद्रा ला देते थे। विद्युत् और चुंबक लगभग एक जैसी ही शक्तियाँ हैं और परस्पर परिवर्तनीय हैं। उन्होंने यह भी दिखाया कि स्वप्न की अनुभूतियाँ भी चुंबकीय क्षेत्र से प्रभावित होती हैं। हम ऐसे सैकड़ों उदाहरण दे चुके हैं कि कई बार मनुष्य के स्वप्न नितांत सत्य पाए जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मानवीय चुंबक शक्ति में ही विचार, सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता के सारे लक्षण विद्यमान हैं। यदि ऐसा ही है तो ध्रुव प्रभावों (अरोरल लाइट) द्वारा जीवात्मा के ऊर्ध्व या अधोगामी लोकों में प्रस्थान की भारतीय मान्यताएँ भी गलत नहीं होनी चाहिए। पुराणों में वर्णन आता है—

नागवीथ्युत्तरं यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम्।
उत्तरं सवितुः पन्था देवयान इति स्मृतः।।
उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम्।
पितृयानः स वै पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः।।

अर्थात्—नाग वीथी से उत्तर और सप्तर्षि से दक्षिण, सूर्य का जो उत्तर की तरफ का मार्ग है, उसे देवयान कहते हैं। अगस्त्य के तारे से जो उत्तर और अजवीथी से दक्षिण है, उस वैश्वानर मार्ग से बाहर पितृयान का मार्ग है।

यह मार्ग पृथ्वी की चुंबकीय शक्ति और सूर्य के प्रकाश कणों के सम्मिलित रूप से बनते हैं। उनका स्वरूप विद्युत् चुंबकीय ही होता है, जैसा कि पिछले ध्रुव प्रभा वाले लेख में दिया है। धन और ऋण विद्युत् कणों का एक-दूसरी ओर आना-जाना ही विद्युत् या चुंबक शक्ति का क्रम है। वैदिक भाषा में इसे ही "एति च प्रेति च" कहा है। इसे ऋग्वेद में—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती,
व्यख्यन्महिषो दिवम्।

—ऋग्वेद १० ।१८६ ।२

अर्थात्—प्राण-अपान रूप में स्पंदित यह शक्ति ही जीवन का आधार है।

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

अर्थात्—काले वर्ण के लोकों से विचरता हुआ मृत्यु और अमृत अर्थात् प्रकृति और प्राण (धन और ऋण या उत्तरी ध्रुव चुंबकत्व व दक्षिणी ध्रुव चुंबकत्व) दोनों सुव्यवस्थित करता हुआ सुवर्णमय रथ से सविता (आदित्य प्राण) समस्त लोकों को देखता हुआ, दर्शन देता हुआ आ रहा है।

जहाँ अब यह सिद्ध होता जा रहा है कि जीवनी शक्ति विद्युत् चुंबकीय तत्त्व है, वहाँ उसके सूर्य लोक से निःसृत होने के प्रमाण भी वैज्ञानिकों को मिल रहे हैं। सूर्य में काले धब्बों का वैज्ञानिकों द्वारा अंकन इस बात की पुष्टि करता है कि सूर्य लोक का संबंध किसी और भी सुविशाल बीज ग्रह से अथवा ब्रह्मांड से है। इस संबंध में आगे की खोजें स्वर्ग मुक्ति और एक विश्वव्यापी

सत्ता के अस्तित्व और उसकी प्राप्ति की आवश्यकता का ही बोध करायेंगी।

इससे यह भी सुनिश्चित है कि गायत्री उपासना के समय सविता के ध्यान से हमारे मस्तिष्क का चुंबकत्व सूर्य के प्रकाश कणों के चुंबकत्व को आकर्षित करता और ग्रहण करता हुआ हमारी जीवनी शक्ति—प्राण को बढ़ाता रहता है।

मनुष्य एक प्रकार का अंडा है, जिसके भीतरी केंद्र में जर्दी रहती है और चारों ओर सफेद मांसल पदार्थ। मनुष्य के शरीर को जर्दी कह सकते हैं और उसके चारों ओर फैले हुए तेजोवलय को सफेदी कह सकते हैं। इस दृश्य और अदृश्य, दोनों को मिलाकर एक पूर्ण व्यक्तित्व बनता है। असल में यह व्याख्या भी त्रुटिपूर्ण है। मनुष्य जितने क्षेत्र में अपना प्रभाव फेंक सकता है और जितने क्षेत्र से प्रभाव ग्रहण कर सकता है, उतने को मनुष्य का संबंध क्षेत्र भी कहा जायेगा। यह परिधि असीम है, इसलिए मनुष्य को भी असीम या अनंत ही माना गया है।

पृथ्वी का दृश्य पिंड छोटा है, पर उसका वायुमंडल चुंबकत्व रेडियो क्षेत्र, अंतर्ग्रही आदान-प्रदान की परिधि को मिलाकर देखा जाय तो लगेगा कि ब्रह्मांड परिवार की विशालकाय मशीन का यह एक सुसमृद्ध पुर्जा मात्र है। विश्व परिवार से पृथक् होकर पृथ्वी का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। ठीक इसी प्रकार मनुष्य भी विश्व चेतना की श्रृंखला की एक कड़ी मात्र ही है। घड़ी का छोटा पुर्जा तभी तक उपयोगी है, जब तक वह घड़ी के साथ जुड़ा है, अलग रहकर वह कूड़ा-कचरा मात्र है। मनुष्य अपने को एकाकी मानता भले ही रहे, पर तथ्य यह है कि उसका वैभव, सुख एवं प्रगति-प्रयास विश्व चेतना पर ही पूर्णतया निर्भर हैं। आत्मा, उसका कलेवर शरीर, शरीर के इर्द-गिर्द छाया हुआ तेजोवलय, तेजोवलय में सन्निहित सूक्ष्म शक्तियों की हलचलों की अकल्पनीय परिधि—यह सब मिलकर ही मनुष्य की विशालता समझी जानी

चाहिए। काय-कलेवर की ससीमता और विश्व ब्रह्मांड की असीमता के बीच की कड़ी यह तेजोवलय ही है, जो मनुष्य के चारों ओर छाया रहता है। आँखों से दीखते हुए भी उसकी भूमिका इतनी आश्चर्यजनक है कि उसे दृश्य काया से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। शरीर मर जाता है, पर यह तेजोवलय फिर भी विद्यमान रहता है। भूत-प्रेतों के रूप में उसी की हलचलें देखी जाती हैं। हो सकता है कोई व्यक्ति कहीं जन्म ले चुका हो और उसका तेजोवलय स्वतंत्र रूप से काम कर रहा हो, प्रेतात्मा की भूमिका निवाह रहा हो।

धरती और आकाश में काम करने वाली दृश्य एवं अदृश्य शक्तियाँ अपने आप में एकाकी अथवा पूर्ण नहीं हैं। वे दूसरों के अनुदान, संयोग, समन्वय से बनी हैं। अणु की सत्ता जिस रूप में सामने आती है, वह उसकी अपनी एकाकी कमाई नहीं है। उसमें भूतल ही नहीं अन्य-अन्य लोकों का भी अद्‌भुत अनुदान जुड़ा होता है, अन्यथा ये आणविक गतिविधियाँ मात्र हलचल बनकर रह जाएँ, उनके द्वारा कोई उत्साहवर्धक प्रयोजन पूरा न हो सके।

यही बात मानवी व्यक्तित्व के बारे में भी है। जीव कोषों से विनिर्मित यह घटक यदि अनेकों दूरवर्ती सत्ताओं का कृपा पात्र न हो, तो संभवतः वह क्षुद्र जीवधारी से अधिक कुछ भी न बन पाता।

जड़ अणुओं की गति एक प्रकार की विद्युत् उत्पन्न करती है। उसमें जब चेतन सत्ता का समावेश होता है तो जीवन का, जीवधारियों का आविर्भाव होता है। ध्रुवों के क्षेत्र में चुंबकीय तूफान उठते रहते हैं, जिनका प्रकाश 'अरोरा बोरीलिस' तेजोवलय के रूप में छाया रहता है। इसे पृथ्वी के साथ अन्य ग्रहों की सूक्ष्म हलचलों का मिलन-स्पंदन कह सकते हैं। यही है वह पृथ्वी का ग्रहों के साथ प्रणय-परिणय, जिसके फलस्वरूप कुंती के पाँच पुत्रों की तरह पाँच की विविध-विध हलचलें जन्म लेती हैं और उनके

क्रिया-कलाप एक से एक बढ़कर अद्भुत और शक्तिशाली बने हुए सामने आते रहते हैं।

समुद्र का खारा जल जब धातु विनिर्मित नौकाओं तथा जलयानों से टकराता है, तो उससे विद्युत् तरंगें उत्पन्न होती हैं। नौका विज्ञानी इस अनायास होते रहने वाले विद्युत् उत्पादन से परिचित रहते हैं और उसकी हानिकारक-लाभदायक प्रतिक्रिया से सतर्क रहते हैं।

ठीक इसी प्रकार शरीरगत जीवाणु भी ईथर एवं वायुमंडल में भरे विद्युत् प्रवाह से टकराते हैं और विद्युत् ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। जीव कोषों में उन धातुओं तथा रसायनों की समुचित मात्रा रहती है, जो आघातों से उत्तेजित होकर विद्युत् प्रवाह उत्पन्न कर सके। यही कारण है कि हर मुनष्य में गर्मी ही नहीं रहती वरन् विद्युत् प्रवाह की अनेक स्तरों की धाराएँ भी बहती रहती हैं। इन्हें यंत्रों द्वारा भली प्रकार परखा-जाना जा सकता है।

मानवी चुंबकत्व विश्वव्यापी ब्रह्मसत्ता के साथ एक तंतुनाल द्वारा जुड़ा रहता है। विष्णु की नाभि में से कमल का उत्पन्न होना और उसके पुष्प पर ब्रह्मा जी का अवतरण, परमात्मा और आत्मा के बीच में संबंध सूत्र की इसी श्रृंखला का अलंकारिक चित्रण है। गर्भस्थ बालक माता के साथ इसी नालतंतु द्वारा जुड़ा रहता है। नाभि को मध्य केंद्र माना गया है। नवजात शिशु का नाभि नाल प्रसव के उपरांत ही बाहर आता है और उसे काटकर दोनों को पृथक् करना पड़ता है।

मनुष्य के कान सीमित स्तर के ध्वनि-प्रवाह को ही सुनते हैं, किंतु पशुओं में ऐसी चेतना पाई जाती है, जिसके आधार पर वे उन ध्वनियों को भी सुन सकें, जिन्हें सुनने में मनुष्य असमर्थ रहता है। यंत्रों द्वारा ऐसी सीटी बजाई जा सकती है, जिसे मनुष्य तो अनुभव न करें, पर कुत्ता आसानी से सुन सके और उसकी बुलाहट पर दौड़ा आवे। मालिक की आवाज को वह इतनी दूर से

सुन सकता है, जितना कि सामान्य मनुष्यों के लिए सुनना सर्वथा असंभव है।

मेज पर एक कोरा कागज बिछाइए। उसके ऊपर एक चुंबक रखिए। एक फुट ऊँचाई से लोहे का बुरादा धीरे-धीरे बरसाइये। देखा जायेगा कि लोहकण एक विशिष्ट क्रम के अनुसार गिर रहे हैं। यह क्रम चुंबक की बल रेखाओं के अनुरूप होगा। कागज पर चुंबक की अंतःस्थिति कागज पर गिरे लोहे के बुरादे से भली प्रकार स्पष्ट हो रही होगी।

मनुष्य भी एक प्रकार का चुंबक है। वह अंतरिक्ष से बरसने वाले अनेक भले-बुरे अनुदानों को अपनी आंतरिक स्थिति के अनुरूप स्वीकार-अस्वीकार करता है। वह जैसा कुछ स्वयं है, उसी का चुंबकत्व उसे इस विश्व ब्रह्मांड में अपनी जैसी सूक्ष्म धारा प्रवाह से अनायास ही संपन्न-सज्जित करता रहता है।

□ □

गायत्री उपासना से प्राणशक्ति का अभिवर्धन

"गय" का अर्थ संस्कृत में प्राण और "त्री" का अर्थ त्राण है। "त्रायते प्राणः इति गायत्री" अर्थात् जो प्राणों का त्राण करती है, उसे गायत्री कहते हैं। त्राण का अर्थ छुटकारा दिलाना, मुक्त करना होता है। प्राण हमारे शरीर इंद्रियों और उनकी विषय वासनाओं में पाशबद्ध "ब्राह्मी" अथवा चेतन तत्त्व है। उसे उस बंधन से मुक्ति दिलाकर चेतन सत्ता का बोध करना, यही प्राणों का परिणाम हुआ। इस अर्थ में प्राणों का सारा विज्ञान गायत्री में आता है। पिछले अध्यायों में जिन अतींद्रिय क्षमताओं की चर्चा हुई है, वह इस तरह गायत्री उपासना से ही प्राप्त किये जा सकते हैं।

प्राण शब्द की व्युत्पत्ति "प्र" उपसर्ग पूर्वक "अन्" धातु से है। "अन्" धातु जीवन शक्ति एवं चेतना वाचक है। इसलिए प्राण शब्द का अर्थ चेतन शक्ति से किया जाता है। "लेटेंट हीट" या "साइकिक-फोर्स" इसे ही कहते हैं। तांड्य जैमिनी तथा शतपथ ब्राह्मण ग्रंथों ने प्राण को 'गायत्री प्राणौ वै गायत्री' कहा है। तांड्य १२।१।२ में उसे ही "दवियनुतती गायत्री" अर्थात् यह विद्युत् ही गायत्री है। इस प्रकार हम देखते हैं—गायत्री, प्राण-विद्युत् सब एक ही तत्त्व हैं। उसी से जीवन के समस्त व्यापार चलते हैं। वशिष्ठ ने वायु में हुई प्राण-विद्युत् की गहन शोध करके ही प्राणायाम के उन विधानों को खोजा था, जो न केवल मानवीय क्षमताएँ बढ़ाते हैं, वरन् मनुष्य का संबंध अन्य लोकों की सूक्ष्म शक्तियों से भी जोड़ते हैं। प्राण विद्या प्रकरण ६वें अध्याय में २४वें सूक्त के २० से ३१ तक के मंत्रों में उसकी विशद् विवेचना हुई है और यह बताया है कि जिस प्रकार कोई यांत्रिक (इंजीनियर) यंत्र चलाता है, उसी

प्रकार जीवन की समस्त गतिविधियों का व्यापार इस शक्ति से ही होता है।

गायत्री उपासना के समय सूर्य से किस तरह विशाल परिमाण में प्राण ऊर्जा आकर्षित, धारण और विकसित की जा सकती है, इस पर भारतीय मनीषियों ने व्यापक खोज की थी। प्राण को तत्त्वदर्शियों ने दो भागों में विभक्त किया है—(१) अणु (२) विभु। अणु वह जो पदार्थ जगत् में सक्रिय बनकर परिलक्षित होता है। विभु वह जो चेतन जगत् में जीवन बनकर लहलहा रहा है। इन दो विभागों को आधिदैविक (कॉस्मिक) और आध्यात्मिक (माइक्रोकॉस्मिक) अथवा हिरण्यगर्भ कहा जाता है।

आधिदैविकेन समष्टिव्यष्टिरूपेण हिरण्यगर्भेण
प्राणात्मनैवैतद् विभुत्वमाम्नायतेनाध्यात्मिकेन।

—ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य

समष्टि रूप हिरण्यगर्भ विभु है। व्यष्टि रूप आधिदैविक अणु।

इस अणु शक्ति को लेकर ही पदार्थ विज्ञान का सारा ढाँचा खड़ा किया गया है। विद्युत्, ताप, प्रकाश, विकिरण आदि की अनेकानेक शक्तियाँ उसी स्रोत में गतिशील रहती हैं। अणु के भीतर जो सक्रियता है, वह सूर्य की है। यदि सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक न पहुँचे, तो यहाँ सर्वथा नीरव स्तब्धता परिलक्षित होगी। कहीं कुछ भी हलचल दिखाई न पड़ेगी। अणुओं की जो सक्रियता पदार्थों का आविर्भाव, अभिवर्धन एवं परिवर्तन करती है, उसका कोई अस्तित्व दिखाई न पड़ेगा। भौतिक विज्ञान ने इसे सूर्य द्वारा पृथ्वी को प्रदत्त अणुशक्ति के रूप में पहचाना है और उससे विभिन्न प्रकार के आविष्कार करके सुख-साधनों का आविर्भाव किया है। शक्ति के कितने ही प्रचंड स्रोत करतलगत किये हैं। पर यह नहीं मान बैठना चाहिए कि विश्वव्यापी शक्ति भंडार मात्र अणु शक्ति की भौतिक सामर्थ्य तक ही सीमाबद्ध है।

जड़ जगत् में शक्ति तरंगों के रूप में संव्याप्त सक्रियता के रूप में प्राण का परिचय दिया जा सकता है और चेतन जगत् में संवदेना उसे कहा जा सकता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया इसी संवेदना के तीन रूप हैं। जीवंत प्राणी इसी के आधार पर जीवित रहते हैं। उसी के सहारे चाहते, सोचते और प्रयत्नशील होते हैं। इस जीवनी शक्ति की जितनी मात्रा जिसे मिल जाती है, वह उतना ही अधिक प्राणवान् कहा जाता है। आत्मा को महात्मा, देवात्मा और परमात्मा बनने का अवसर इस प्राणशक्ति की अधिक मात्रा उपलब्ध करने पर ही संभव होता है। चेतना की विभु सत्ता, जो समस्त विश्व ब्रह्मांड में संव्याप्त है, चेतन प्राण कहलाती है। उसी का अमुक अंश प्रयत्नपूर्वक अपने में धारण करने वाला प्राणी—प्राणवान् एवं महाप्राण बनता है।

प्रश्नोपनिषद् में प्राण का उद्‌गम केंद्र सूर्य को माना गया है—

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते।

—प्रश्न० १—७

यह भौतिक व्याख्या है। सभी जानते हैं कि पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति का श्रेय सूर्य किरणों को है।

स्थूल जगत् की जीवनी शक्ति का केंद्र सूर्य है। उसके पाँच प्राणतत्त्व हैं।

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राण मनु गृह्णानः।

पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः।

तेजो ह वा उदानः। —प्रश्न० ४-१-८

यह सूर्य ही बाह्य प्राण है। उदय होकर दृश्य जगत् की हलचलों को क्रियाशील करता है। इस विश्व रूपी शरीर को यह

सूर्य का महाप्राण ही जीवंत रखता है। पाँच तत्त्वों में वह पाँच प्राण बनकर संव्याप्त है।

सोवियत रूस के वैज्ञानिक डॉ० जी० ए० उशाकोव ने अपने ध्रुव शोध के विवरणों में एक और नया तथ्य प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं कि, जीवन का आधार मानी जाने वाली ऑक्सीजन वायु पृथ्वी की अपनी उपज अथवा संपत्ति नहीं है। वह सूर्य से प्राणरूप में प्रवाहित होती हुई चली आती है और धरती के वातावरण में यहाँ की तात्त्विक प्रक्रिया के साथ सम्मिश्रित होकर प्रस्तुत 'ऑक्सीजन' बन जाती है। यदि सूर्य अपने उस प्राण प्रवाह में कटौती कर दे अथवा पृथ्वी ही किसी कारण उसे ठीक तरह ग्रहण न कर सके, तो ऑक्सीजन की न्यूनता के कारण धरती का जीवन संकट में पड़ जायेगा। पृथ्वी से ६२ मील ऊँचाई पर यह प्राण का ऑक्सीजन रूप में परिवर्तन आरंभ होता है। यह ऑक्सीजन बादलों की तरह चाहे जहाँ नहीं बरसता रहता, वरन् वह भी सीधा उत्तरी ध्रुव पर आता है और फिर दक्षिणी ध्रुव के माध्यम से समस्त विश्व में वितरित होता है। ध्रुव प्रभा में रंग-बिरंगी झिलमिल का दीखना विद्युत् मंडल के साथ ऑक्सीजन की उपस्थिति का प्रमाण है।

प्राणायाम का, प्राण विद्या का उद्देश्य उसी सूर्य प्राण को अभीष्ट परिमाण में ग्रहण करके शरीर में धारण करना है। चुंबकीय विद्युत् प्रवाह को दीप्तिमान् करने के लिए जिस प्राण अभिवर्धन की आवश्यकता होती है, उसे प्राण साधना क्रम से विशेष प्राणायामों द्वारा उपलब्ध किया जाता है। स्वरयोग एवं प्राणविद्या की निर्धारित साधना पद्धति द्वारा कुंडलिनी अग्नि को ठीक उसी प्रकार प्रदीप्त करते हैं, जैसे लुहार अपनी आग की भट्ठी को धोंकनी की हवा से तेज करता है। नासिका छिद्रों से प्राणतत्त्व को अनंत आकाश से आकर्षित करके सूर्य तत्त्व द्वारा प्रेरित चुंबकीय प्रवाह को तीव्र बनाया जाता है।

इस प्रकार उत्पन्न हुए प्रकाश के कारण सारा सोया हुआ प्राण जीवित हो उठता है। सूर्य के निकलते ही पशु, पक्षी, कीट, पतंग सभी निद्रा त्यागकर अपने कार्य में उत्साहपूर्वक लगते दिखाई देते हैं। कलियाँ खिलने लगती हैं और वायु का प्रवाह तीव्र हो जाता है। ठीक इसी प्रकार प्राण साधना से जब हमारे दोनों ध्रुव शक्ति-प्रवाह से भरने लगते हैं, तो सूर्योदय जैसी हलचल उत्पन्न होती है और न केवल स्थूल शरीर के वरन् सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के भी दृश्य और अदृश्य अंग-अवयव अपनी सक्रियता प्रदर्शित करने लगते हैं। साधक को अनुभव होता है, मानो वह केंचुली छोड़कर स्फूर्ति या सर्प की तरह नव चेतना का अपने में अनुभव कर रहा है।

कभी-कभी सूर्य मंडल में विशेष उत्क्रांति उत्पन्न होने से उस प्रवाह की एक लहर पृथ्वी पर भी चली जाती है और ध्रुव प्रदेश में चुंबकीय आँधी-तूफानों का सिलसिला चल पड़ता है। इनकी प्रतिक्रिया उसे ध्रुव क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रखती, वरन् समस्त विश्व को प्रभावित करती है। कई बार यह चुंबकीय तूफान बड़े उपयोगी और सुखद परिणाम उत्पन्न करते हैं और कई बार इनमें कुछ ऐसे तत्त्व घुले हुए चले आते हैं, जिनका प्रभाव समस्त विश्व को कई प्रकार के संकटों में धकेल दें। एक बार सन् १९३८ में एक चुंबकीय तूफान ध्रुव प्रदेश पर आया था, उसकी भयानक चमक अफ्रीका तथा क्रीमिया तक देखी गयी। उसका प्रभाव न केवल वस्तुओं पर पड़ा, वरन् जीवधारी भी बुरी तरह प्रभावित हुए। ऐसी ही विद्युत् आँधियों ने धरती पर 'हिम युग' उपस्थित कर दिया। मुद्दतों तक बहुत बड़े भू-भाग को बर्फ ने ढके रखा। समुद्र में बाढ़ आई और जमीन समुद्र में, समुद्र मरुस्थल में बदल गया। कहते हैं कहीं ऐसे ही वायु प्रलय, जल प्रलय, अग्नि प्रलय भी उपस्थित हो सकती है और यह चुंबकीय आँधियाँ धरती के वर्तमान स्वरूप को कुछ से कुछ करके रख सकती हैं।

प्रकृतिगत चुंबकीय आँधियाँ पंचतत्त्वों के हेर-फेर अथवा नियति के विधान से आती हैं, पर योग साधना से ऐसी चुंबकीय आँधियाँ सूक्ष्म जगत् में उठाई जा सकती हैं और आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रों को ही नहीं, दिव्य सत्ता केंद्रों, देवताओं को उससे प्रभावित किया जा सकता है। इस जगत् को प्रभावित करने वाले। चेतना केंद्र 'सविता' को तपस्वी लोग हिला-डुला सकते हैं। ध्रुव प्रकाश में प्रखर तीव्रता मार्च और सितंबर (चैत्र और आश्विन की नवरात्रि के दिनों में) में होती है। इसका कारण पृथ्वी का अक्ष सूर्य के साथ उचित कोण पर होता है। बीज बोने का वही समय अधिक प्रभावी होता है। गर्भ स्थापनाएँ भी उन्हीं दिनों अधिक होती हैं। फूल खिलने का समय यही है। साधक लोग साधनाओं में अधिक सफलता भी इन्हीं दिनों पाते हैं। हम अपनी पृथ्वी की कामकला को सूर्य तेज कला के साथ जब भी जोड़ सकें, तभी यह प्रकाश-प्रवाह में तीव्रता आने वाली स्थिति पैदा हो सकती है और उसकी प्रतिक्रिया व्यक्तिगत जीवन में आश्चर्यजनक परिणाम लेकर प्रस्तुत हो सकती है। इतना ही नहीं व्यापक वातावरण को भी उससे प्रभावित किया जा सकता है।

अलेक्जेंडर मार्शेक ने सघन अंतरिक्ष में प्रकाश के रूप में भी और शब्दों के रूप में भी सौरमंडल तथा मंदाकिनी-आकाशगंगा से आने वाले शक्ति-प्रवाहों को सुना है। उसका यांत्रिक अंकन किया है। यह आवाज क्रमबद्ध संगीत एवं स्वर लहरियों की तरह है। यों कान से वे ध्वनि मात्र सुनाई पड़ती हैं, उनका कोई विशेष महत्त्व समझ में नहीं आता, पर खगोल विद्या की नवीनतम शोधें यह स्पष्ट करती चली जा रही हैं कि यह शब्द-प्रवाह भी सूर्य से ध्रुव प्रदेशों पर बरसने वाले गति-प्रवाहों की तरह ही अतीव सामर्थ्यवान् हैं और उनके द्वारा प्राणियों के शरीर तथा मन पर ऐसा प्रबल प्रभाव पड़ता है, जैसा व्यक्तिगत प्रयत्नों से बहुत

परिश्रम करने पर भी संभव नहीं। यह प्रभाव भले और बुरे दोनों ही स्तर का होता है।

योग साधना में शब्द साधना का विशेष स्थान है। कुंडलिनी साधना में नाद, बिंदु, कला की साधनाएँ, इन अविज्ञात शक्ति-प्रवाहों को समझना और उनके साथ अपना संबंध स्थापित करना ही है। शंख, घंटा, सीटी, नफीरी, झींगुर, निर्झर, मेघ गर्जन आदि के शब्द, नाद साधना में सुने जाते हैं। यह मात्र चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने के लिए ही नहीं, वरन् इसलिए भी हैं कि लोक-लोकांतरों में, ग्रह-नक्षत्रों, आकाशगंगाओं एवं देव-संस्थानों में जो अनुदान सूर्य की भाँति ही बरसाए जाते रहते हैं, उन्हें ग्रहण कर सकना और उनसे लाभान्वित हो सकना संभव हो सके। कुंडलिनी साधक को यह प्रक्रियाएँ अपनानी पड़ती हैं। फलतः वह दैवी वरदानों की तरह अपने में बहुत कुछ अनुपम और अद्‌भुत तत्त्व समाविष्ट हुआ अनुभव करता है।

ध्रुव प्रभा का स्वरूप 'सर्च लाइट' की तरह होता है। वह उत्तर की अपेक्षा दक्षिण की ओर काफी तीव्र होती है। इससे प्रकट होता है कि वह प्रवाह एक स्थान पर दक्षिणी ध्रुव की ओर तीव्र गति से दौड़ रहा है। हमारे मस्तिष्क में अवतरित होने वाला दिव्य तेजस् भी योनि गह्वर की और कुंडलिनी केंद्र की ओर दौड़ता है। दक्षिणी ध्रुव में पेंग्विन नामक पक्षी पाया जाता है। यह अति मृदुल स्वभाव का होता है और आगंतुकों से अत्यंत मधुर, प्रेम भरा व्यवहार करता है। वस्तुतः दक्षिणी ध्रुव कला केंद्र ही है। वहाँ प्रेम की कोमलता, मधुरता और सरलता की अजस्त्र धारा बहती है। पेंग्विन पक्षी की तरह ही—योनि गह्वर में सरसता और रसिकता का आनंद और उल्लास का मिठास भरा पड़ा है। इसे जाग्रत् किया जा सके, तो जीवन में कलात्मक सरसता का उल्लास निर्झरिणी की तरह फूटकर प्रवाहित हो सकता है। दक्षिणी ध्रुव समुद्रतल से ९६००० फुट उभरा हुआ है। इसे विश्व शरीर

की जननेंद्रिय का उभार कह सकते हैं। पुराणों में इसे शिवलिंग कहा गया है। नारी की जननेंद्रिय में भी यह उभार छोटे रूप में पाया जाता है।

ध्रुवों पर सूर्य की किरणों की विचित्रता के फलस्वरूप वहाँ सब कुछ जादू नगरी जैसा दीखता है। वहाँ पर अक्सर अपनी छाया दुहरी दिखाई पड़ती है। आत्मवेत्ता भी अपने साथ परा और अपरा प्रकृति की दो सहेलियाँ साथ फिरते देखता है और अपने को इन छायाओं से स्थूल और सूक्ष्म शरीरों से भिन्न अविनाशी आत्मा ही मानता है।

भारतीय प्राण-विद्या का प्रयोजन यह है कि दोनों ध्रुवों पर बरसने वाली सूर्य शक्ति सन्निहित प्राण धारा को अभीष्ट मात्रा में आकर्षित करके, उनके द्वारा स्थूल और सूक्ष्म चेतना को समग्र दृष्टि से पुष्ट किया जाय।

मस्तिष्क द्वारा भी किन्हीं अनजाने प्रकाश-स्रोतों के प्रकाश कण आकर्षित कर प्रकाश शरीर वाले सूक्ष्म शरीर को विकसित किया जा सकता है। यह थोड़ी कठिन उपपत्ति (सोल्यूशन) है, तथापि विज्ञान अब उसे भी प्रमाणित करने लगा है। इस प्रमाण के लिए रूसी खगोलशास्त्री श्री चिजोव्स्की को भारी तप करना पड़ा।

पहले तो वह घंटों कभी सूर्य की तेज धूप में, तो कभी चंद्रमा के शीतल प्रकाश में बैठे रहते और होने वाले अपने मानसिक परिवर्तनों को लिखते रहते। फिर उन्होंने पिछले ४०० वर्षों के इतिहास में मानवीय स्वभाव के उतार-चढ़ाव तथा अनेक प्रकार की बीमारियों के वार्षिक आँकड़े एकत्रित कर देखा कि सूर्य आदि की चमक और उसके ११ वर्षीय कलंकों [सन-स्पाट्स] से मनुष्य की मनोदशा से गहरा संबंध है। इस संबंध में विस्तृत चर्चा तो कभी बाद में करेंगे, पर यहाँ यह समझ लेना नितांत आवश्यक है कि विचार प्रणाली का संबंध मस्तिष्क की जिन थायरॉइड, एड्रीनल और पिट्यूटरी आदि ग्रंथियों से है, वे सब नलिकाविहीन

[डक्टलेस] होती हैं, अर्थात् उनमें किसी प्रकार का रासायनिक प्रभाव नहीं होता। प्रकाश या प्राण के सूक्ष्म कण भी उसी तरह प्रवाहित होते हैं, जिस प्रकार तार में विद्युत्-कण। जैसे-जैसे यह प्रकाश-कण होते हैं, वैसे-वैसे ही भाव उठते हैं। सूर्य की तेज धूप में क्लांति, क्रोध, वीरता जैसे भाव आते हैं, तो चंद्रमा के प्रकाश में आह्लाद और कामुकता के। अब यदि कोई व्यक्ति अपना ध्यान किसी प्रकाश-स्रोत पर लगाता है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमारी नलिकाविहीन ग्रंथियाँ उस स्रोत विशेष से विद्युत् चुंबकीय संबंध स्थापित कर लेती हैं और वह कण तेजी से हमारे अंदर भरने लगते हैं। ध्यान जितना एकाग्र और गहन होता है, इस आकर्षण की ओर सूक्ष्म शरीर के विकास की गति को हम उतना ही स्पष्ट अनुभव करते-करते एक दिन उस स्रोत से तादात्म्य कर सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

उदाहरण के लिए गायत्री उपासना के साथ सूर्य का ध्यान भी करना पड़ता है। ध्यान की अवस्था में सूर्य के विद्युत्-चुंबकीय प्रवाह से अपने मस्तिष्क की चोटी वाले स्थान से नलिकाविहीन ग्रंथियों का संबंध जुड़ जाता है और सूर्य तेज के कण हमारे शरीर में प्रवेश करते हुए चले जाते हैं, इस तरह अपना प्राण शरीर विकसित होता हुआ सूर्य प्रकाश के समान हल्का, दिव्य, तेजस्वी होता चला जाता है।

➢ प्राणशक्ति से सर्वतोमुखी कल्याण साधना

राजा दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन को एक बार स्वर्ग देखने की इच्छा हुई। पिता की आज्ञा लेकर वे स्वर्ग गये। प्रतर्दन के पुरुषार्थ और रण-चातुर्य से इंद्र अत्यंत प्रभावित थे। उन्होंने प्रतर्दन का आदर-सत्कार किया और कहा, 'मैं आपको क्या वर दूँ ?' प्रतर्दन ने कहा, 'भगवन् ! मैं धन-धान्य, प्रजा-पुत्र, यश-वैभव सब प्रकार से परिपूर्ण हूँ। आपसे क्या माँगू ? मुझे कुछ नहीं चाहिए।'

इंद्र हँसकर बोले, 'वत्स, मैं यह जानता हूँ कि पुरुषार्थी व्यक्ति को संसार में कोई अभाव नहीं रहता। अपने सुख-समृद्धि के साधन वह आप जुटा लेता है, तो भी उसे विश्व-हित की कामना करनी चाहिए। लोकसेवा के पुण्य से बढ़कर पृथ्वी में और कोई सुयश नहीं, तुम उससे ब्रह्म को प्राप्त होगे। इसलिए मैं तुम्हें लोक का कल्याण करने वाली प्राण विद्या सिखाता हूँ।'

इसके बाद इंद्र ने प्रतर्दन को प्राणतत्त्व का उपेदश दिया। उन्होंने कहा, 'प्राण ही ब्रह्म है। साधनाओं द्वारा योगी, ऋषि-मुनि अपनी आत्मा में प्राण धारण करते और उससे विश्व का कल्याण करते हैं।'

'कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्' के दूसरे अध्याय में भगवान् इंद्र ने प्रतर्दन को यह प्राण विद्या सिखाई है, उसका बड़ा ही मार्मिक एवं महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। इसी संदर्भ में इंद्र ने, एक व्यक्ति अपनी असीम प्राणशक्ति को दूसरों तक कैसे पहुँचाता है, प्राणशक्ति के माध्यम से दूसरों तक अंतःप्रेरणाएँ और विचार किस तरह पहुँचाता है ? इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए बताया है—

जीवति ..... अथ खलु .... तस्मादेतदेवोऽथमुपासीत। यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः .... स यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतः सर्वादिशो विस्फुलिंग विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोका .....। —कौ० ब्रा० उ० ३.३

अर्थात् 'जब मन विचार करता है, तब अन्य सभी प्राण उसके सहयोगी होकर विचारवान् हो जाते हैं। नेत्र किसी वस्तु को देखने लगते हैं, तो अन्य प्राण उनका अनुसरण करते हैं। वाणी जब कुछ कहती हैं, तब अन्य प्राण उसके सहायक होते हैं। मुख्य प्राण के कार्य में अन्य प्राणों का पूर्ण सहयोग होता है।'

अन्यत्र श्लोक में बताया है कि मन सहित सभी इंद्रियों को निष्क्रिय करके आत्मशक्ति (संकल्प शक्ति) को प्राणों में मिला

देते हैं। ऐसा पुरुष 'दैवी परिसर' का ज्ञाता होता है। वह अपनी प्राणशक्ति से किसी को भी प्रभावित और प्रेरित कर सकता है। उसके संदेश को कहीं भी सुना और हृदयंगम किया जा सकता है। उसके प्राणों में अपने प्राणों को घुलाकर स्वल्प क्षमता के लोग भी अपने प्राण जाग्रत् कर सकते हैं। जिस पुरुष को दैवी परिसर का ज्ञान होता है, उसकी आज्ञा को पर्वत भी अमान्य नहीं कर सकते। उससे द्वेष रखने वाले सर्वथा नष्ट हो जाते हैं।

इसी उपनिषद् में यह भी निर्देश है कि जब पिता को अपने अंतकाल का निश्चय हो जाए, तो पुत्र (अथवा शिष्य या शिष्यों) में अपनी प्राणशक्ति को प्रतिष्ठित कर दे। वह वाक्, प्राण, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, गति, शक्ति, बुद्धि आदि प्रदान करे और पुत्र उसे ग्रहण करे। इसके बाद पिता या गुरु, संन्यासी होकर चला जाए और पुत्र या शिष्य उसका उत्तराधिकारी हो जाये अर्थात् परमार्थ परंपरा रुके नहीं, अक्षुण्ण बनी रहे।

प्राचीनकाल में यह परंपरा आधुनिक सशक्त यंत्रों की बेतार के तार की भाँति प्रचलित थी। प्राण विद्या के ज्ञाता गुरु अपने प्राण देकर शिष्यों के व्यक्तित्व और उनकी क्षमताएँ बढ़ाया करते थे। इसी कारण श्रद्धा-विनत होकर लोग ऋषि आश्रमों में जाया करते थे। ऋषि अपने प्राण देकर उन्हें तेजस्वी, मेधावान् और पुरुषार्थी बनाया करते थे। महर्षि धौम्य ने आरुणि को, गौतम ने जाबालि को, इंद्र ने अर्जुन को, यम ने नचिकेता को, शुक्राचार्य ने कच को इसी तरह उच्च स्थिति में पहुँचाया था। योग्य गुरुओं द्वारा यह परंपराएँ अब भी चलती रहती हैं। परमहंस स्वामी रामकृष्ण ने विवेकानंद को शक्तिपात किया था। स्वामी विवेकानंद ने सिस्टर निवेदिता में प्राण प्रत्यर्पित किये। महर्षि अरविंद ने प्राणशक्ति द्वारा ही संदेश भेजकर पांडिचेरी आश्रम की संचालिका 'अदिति-सह भारतमाता' की संपादिका 'श्री यज्ञशिखा माँ' को

पेरिस से बुलाया था और उन्हें योग विद्या देकर भारतीय दर्शन का निष्णात बनाया था।

कहते हैं जब राम वनवास में थे, तब लक्ष्मण अपने तेजस्वी प्राणों का संचालन करके प्रत्येक दिन की स्थिति के समाचार अपनी धर्मपत्नी उर्मिला तक पहुँचा देते थे। उर्मिला उन संदेशों को चित्रबद्ध करके रघुवंश परिवार में प्रसारित कर दिया करती थी और बेतार के तार की तरह के संदेश सबको मिल जाया करते थे।

अनुसुइया आश्रम में अकेली थीं। भगवान् ब्रह्मा, विष्णु और महेश वेश बदलकर परीक्षार्थ आश्रम में पहुँचे। अत्रि मुनि बाहर थे। उन्होंने ही भगवान् के त्रिकाल रूप को पहचाना था और वह गुप्त संदेश अनुसुइया को प्राणशक्ति द्वारा ही प्रेषित किया। ऐसी कथा-गाथाओं से सारा हिंदू-शास्त्र भरा पड़ा है।

आज का विज्ञानमुखी समाज इन उपाख्यानों को तर्क की दृष्टि से देखता है। लोग शक और संदेह करते हैं; कहते हैं, ऐसा भी कहीं संभव है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को बिना किसी उपकरण या माध्यम के संदेश पहुँचा सके।

यदि विचारपूर्वक देखें तो विज्ञान भी इसकी पुष्टि ही करेगा। बेतार के तार के सिद्धांत को कौन नहीं जानता ? शब्द को विद्युत् तरंगों में बदल देते हैं। यह विद्युत् तरंगें ईथर तत्त्व में धाराएँ बनकर प्रवाहित होती हैं। ट्रांसमीटर जितना शक्तिशाली होता है, विद्युत् तरंगें उतनी ही दूर तक दरदराती चली जाती हैं। उसी फ्रीक्वेंसी में लगे हुए दूसरे वायरलेस या रेडियो उन ध्वनि-तरंगों को पकड़ते हैं और पुनः शब्दों में बदल देते हैं, जिससे वे पास बैठे हुए लोगों को सुनाई देने लगती हैं। अब इस बात में तो कोई अविश्वास कर ही नहीं सकता।

जो बात बोली जाती है, वह पहले विचार रूप में आती है, अर्थात् विचारों का अस्तित्व संसार में विद्यमान है। ऊपर के

श्लोक में बताया गया है कि मन या विचारशक्ति प्राण में मिल जाती है, तो सभी प्राण उसके सहायक हो जाते हैं अर्थात् प्राणों के माध्यम से अपने शरीर की संपूर्ण चेतना को, जिसमें हाव-भाव, क्रिया-कलाप, विचार-भावनाएँ सम्मिलित होती हैं, किसी भी दूरस्थ व्यक्ति तक पहुँचाया जा सकता है।

यूनान के चिकित्सा विज्ञानी 'पैपिरस' ने रोगों की उपचार प्रक्रिया में चिकित्सक द्वारा रोगी के सिर पर हाथ फिराकर अच्छा करने की प्रक्रिया को शास्त्रीय रूप दिया था। सम्राट् पाइरस और वैसेपसियन को ऐसे ही उपचारों से कष्ट साध्य रोगों से मुक्ति मिली थी। फ्रांस के शाही परिवार में फ्रांसिस प्रथम से लेकर चार्ल्स दशम तक की चिकित्सा में जीव चुंबक का प्रयोग शक्तिशाली प्रक्रियाओं द्वारा होता रहा है। हाथ का स्पर्श और विशिष्ट दृष्टिपात इस प्रक्रिया में विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है।

विद्वान् स्काचमेन मेक्सवेल ने सन् १६०० में यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि ब्रह्मांडव्यापी एक 'जीवनी शक्ति' का अस्तित्व मौजूद है। प्रयत्न करके उसकी न्यूनाधिक मात्रा अपने में भरी जा सकती है और उसे 'स्व','पर', उत्कर्ष के अनेक प्रयोजनों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

मैक्सवेल से पहले महामनीषी गोक्लोनियस अनेक तर्कों और प्रमाणों से यह सिद्ध कर चुके थे कि मनुष्य के आत्मबल का प्रमुख आधार यह जीवनी शक्ति ही है, जिसे 'जैव चुंबकत्व' के स्तर का समझा जा सकता है। बान हेलमांट इस शक्ति का उपयोग करके शारीरिक और मानसिक रोगियों को कष्टमुक्त करने में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। महाप्रभु अपनी इसी क्षमता के कारण अपने जीवन काल में ही सिद्ध पुरुष गिने जाने लगे थे।

इटली के वैज्ञानिक सेटानेली ने अठारहवीं सदी के आरंभ में अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया था कि मनुष्य शरीर में प्रचंड विद्युतीय विकिरण का अस्तित्व विद्यमान है।

सन् १७३४ से सन् १८१५ तक लगभग पूरे जीवन में डॉक्टर फ्रैडरिक मैस्मर ने प्राणशक्ति के अस्तित्व एवं उपयोग के संबंध में शोध कार्य किया। उन्होंने अपने अनुसंधानों के निष्कर्षों को क्रमबद्ध बनाया और 'मैस्मरिज्म' नाम दिया। आगे चलकर उनके शिष्य 'कांस्टेट युसिगर' ने उसमें सम्मोहन विज्ञान की नई कड़ी जोड़ी और कृत्रिम निद्रा लाने की विधि को 'हिप्नोटिज्म' नाम दिया। फ्रांस के अन्य विद्वान् भी इस दिशा में नई खोजें करते रहे। ला फांटेन एवं डॉ० ब्रेड ने इन अन्वेषणों को और आगे बढ़ाकर इस योग्य बनाया कि चिकित्सा उपचार में उसका प्रामाणिक उपयोग संभव हो सके।

पिछले दिनों अमेरिका में न्यूऑर्लिएन्स तो ऐसे प्रयोगों का केंद्र ही बना रहा है। इस विज्ञान को अमेरिकी वैज्ञानिक डारलिंग और फ्रांसीसी डॉ० द्रुरांड डे ग्रास की खोजों ने विज्ञान जगत् को यह विश्वास दिलाया कि प्राणशक्ति का उपयोग अन्य महत्त्वपूर्ण उपचारों से किसी भी प्रकार कम लाभदायक नहीं है। इस प्रक्रिया को 'इलेक्ट्रो-बायोलॉजिकल्स' नाम दिया गया है। ली वाल्ट की 'जीव विद्युत् के आधार पर चिकित्सा उपचार' नामक पुस्तक को प्रामाणिकता भी मिली और सराहना भी हुई। इस संदर्भ में जिन तीन प्रमुख संस्थानों ने विशेष रूप में शोध कार्य किये हैं, उनके नाम—(१) दि स्कूल ऑफ नेन्सी (२) दि स्कूल ऑफ चारकोट (३) दि स्कूल ऑफ मेस्मेरिस्ट हैं। इनके अतिरिक्त भी छोटे-बड़े अन्य शोध-संस्थान व्यक्तिगत एवं सामूहिक अन्वेषणों को प्रोत्साहन देते रहे हैं।

विज्ञानी मोडात्र्यूज तथा काउंट पुलींगर के शोधों ने यह सिद्ध किया है कि प्राणशक्ति द्वारा रोग उपचार तो एक हल्का-सा खिलवाड़ मात्र है। वस्तुतः उसके उपयोग बहुत ही उच्च स्तर के हो सकते हैं। उसके आधार पर मनुष्य अपने निज के व्यक्तित्व में बहुमुखी प्रखरता उत्पन्न कर सकता है, प्रतिभाशाली बन सकता

है, आत्म-विकास की अनेकों मंजिलें पार कर सकता है। पदार्थों को प्रभावित करके अधिक उपयोगी बनाने तथा इस प्रभाव से जीवित प्राणियों की प्रकृति बदलने के लिए भी प्रयोग हो सकता है। जर्मन विद्युत् विज्ञानी रीकन बेक इसे एक विशेष प्रकार की 'अग्नि' मानते हैं। उसका बाहुल्य वे चेहरे के इर्द-गिर्द मानते हैं और 'औरा' नाम देते हैं। प्रजनन अंगों में उन्होंने इस अग्नि की मात्रा चेहरे से भी अधिक परिमाण में पाई है। दूसरे शोधकर्ताओं ने नेत्रों में तथा उँगलियों के पोरवों में उसका अधिक प्रवाह माना है।

हांगकांग के अमेरिकी डॉक्टर आर्नोल्ड फास्ट ने सम्मोहन विधि से निद्रित करके कई रोगियों के छोटे ऑपरेशन किए थे। पीछे डेंटल सर्जनों ने यह विधि अपनाई और उन्होंने दाँत उखाड़ने में सुन्न करने के प्रयोग बंद करके सम्मोहन विधि प्रयोग को सुविधाजनक पाया। दक्षिण अफ्रीका में जोहन्सबर्ग के टारा अस्पताल में डॉ० बर्नार्ड लेविन्सन ने बिना क्लोरोफार्म सुंघाए इसी विधि से कितने ही कष्टरहित ऑपरेशन करके यह सिद्ध किया कि यह विधि कोई जादू-मंतर नहीं, वरन् विशुद्ध वैज्ञानिक है। अंग्रेज विज्ञानी जेम्स ब्राइड ने भी नाड़ी-संस्थान में पाई जाने वाली विद्युत् शक्ति की क्षमता को मात्र शरीर निर्वाह तक सीमित न रहने देकर उससे अन्य उपयोगी कार्य संभव हो सकने का प्रतिपादन किया है।

द्वितीय महायुद्ध के समय लोगों के मनों में से छिपे हुए रहस्य उगलवा लेने के लिए प्राण विद्युत् के प्रयोग की रहस्यमयी विधियाँ खोजी गई थीं। मनोविज्ञानी जे० एच० एट्स ब्रुक ने इस संदर्भ में कई नये सिद्धांत खोज निकाले थे और उनका प्रयोग जासूसी विभाग के अफसरों को सिखाया था। इसके लिए तब जर्मनी में एक 'हिप्नोटाइजड इंटेलीजेन्स' विभाग ही अलग से

बनाया गया था। उसके माध्यम से कितनी ही अद्‌भुत सफलताएँ भी मिली थीं।

प्राणशक्ति की सामर्थ्यों और चमत्कारों का कोई पारावार नहीं। जिस तरह परमाणु-संपन्न राष्ट्र विश्व शिरोमणि माने जाते हैं, प्राण-संपन्न व्यक्तियों की ताकत उससे कम नहीं, अधिक होती है। जब तक हमारा देश इस विज्ञान को जानता रहा, तब तक वस्तुतः हमारी स्थिति यही रही। गायत्री उपासना द्वारा अपने वैयक्तिक प्राणों को विभु प्राण सत्ता से जोड़कर अजस्र शक्ति का भंडार भरते रहे हैं और उससे न केवल अपना, सैकड़ों औरों का हित साधन करते रहे हैं। परमाणु विध्वंसक भी है, साथ ही उसी के उपयोग से आज विद्युत् की कमी और उसके द्वारा कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य आदि के क्षेत्र में बहुमूल्य काम उठाये जा रहे हैं। प्राणों का भी यही सही उपयोग है कि उसे लोक हित में लगाया जाए। आज की दैन्यता समाप्त की जाए।

गायत्री सिद्ध महापुरुष एक प्रकार से सूर्य होते हैं। वे लोगों का असीम कल्याण कर सकने की क्षमता से ओत-प्रोत होते हैं, तो भी चाहे जिसकी सहायता नहीं करते, इसका कारण इस शक्ति के सदुपयोग-दुरुपयोग की पात्रता ही होती है। बाप शराबी बेटे को पैसे नहीं देता। इसी प्रकार हर किसी को तो शक्ति नहीं बाँटी जा सकती, पर गर्मी, प्रकाश, पोषण देने का स्थूल-कार्य सूर्य भी करते हैं, महापुरुष भी। वही नीति प्रज्ञा पुत्र गायत्री उपासकों को भी करनी चाहिए। लोगों को प्राण देकर भले ही भला न कर सकें, पर उन्हें प्रेरणा देकर सन्मार्ग में लगाकर इतना बड़ा कल्याण कर सकते हैं, जिसकी तुलना में कोई भी बड़ी-से-बड़ी भौतिक सहायता निम्न स्तर की ही ठहरेगी।

प्राण कहाँ से आता है ? उसके उपलब्धि स्रोत कहाँ हैं ? यह तलाश करने पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ेगा कि यह बहुमूल्य संपदा हमें शुद्ध वायु, निर्मल जल, सात्त्विक आहार, सूर्य

संपर्क, गहरी नींद, संतुष्ट मनःस्थिति से प्राप्त होती है। इन शक्ति स्रोतों की जितनी उपेक्षा करेंगे, उनसे जितने दूर रहेंगे उतने ही क्षीण होते चले जायेंगे। कमाई कम और खर्च अधिक करने पर कोई व्यवसाय ठीक तरह नहीं चलता, फिर जीवन व्यवसाय ही कैसे चलेगा ?

हर काम की सीमा है। मर्यादा में रहकर ही स्थिरता प्राप्त हो सकती है। सामर्थ्य से अधिक काम करना, साधनों से असंबद्ध महत्त्वाकांक्षाएँ गढ़ना, भोगासक्ति में निमग्न होकर इंद्रियों से अधिक काम लेना, दिनचर्या की नियमितता का ध्यान न रखना आदि बातें देखने-सुनने में कोई बहुत बड़ी गल्तियाँ नहीं मालूम पड़तीं, पर वे छोटी होने पर भी चिनगारी की तरह हमारे हँसते-खेलते जीवनोद्यान में आग लगा देने के लिए पर्याप्त हैं। नैतिक और सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाला अपनी प्रामाणिकता खो बैठता है और जन सहयोग से वंचित होता चला जाता है। व्यक्तिगत जीवनचर्या में मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाला उस बहुमूल्य संपदा को खोता चला जाता है, जिसके आधार पर सर्वतोमुखी प्रगति की संभावनाओं की पृष्ठभूमि बनती है।

विषपान से आत्महत्या करने वाले की रक्षा कौन, कब तक करेगा ? जिन्होंने नशे पीकर अपने पैरों कुल्हाड़ी मारने पर कमर कस ली है, उनकी प्राणशक्ति कब तक स्थिर रहेगी ? उत्तेजक मसाले भी एक प्रकार के विष ही हैं। वासनात्मक उत्तेजनाओं से मन को निरंतर उद्विग्न करते रहने से हम अपनी ही सुसंचित जीवन संपदा का क्षरण करते चले जाते हैं और अपने ही पापों का फल भोगने के लिए रुग्णता, अशक्तता एवं अकाल मृत्यु के नर्क में जा गिरते हैं।

दार्शनिक कन्फूशियस ठीक ही कहते थे, जो मितव्ययता के नियम को भंग करेगा, वह अंत में दुःसह दुःख सहता हुआ मरेगा। उनकी यह उक्ति प्राणशक्ति के अपव्यय के संबंध में सोलहों

आना सच उतरती है। हम अपनी ही जीवन-सामर्थ्य से खिलवाड़ करते हैं—उसे अनावश्यक रूप से बरबाद करते हैं। ऐसी दशा में पग-पग पर ठोकर खाने और अशांत, असफल रहने का दुष्परिणाम भोगें तो आश्चर्य ही क्या है ?

अपनी प्राणशक्ति को यदि हम मितव्ययतापूर्वक खर्च करें तो जीवन को लंबा और निरोग बनाने में उसका उपयोग कर सकते हैं और इस बचत से कुछ महत्त्वपूर्ण उपार्जन कर सकते हैं।

प्राणशक्ति का सबसे अधिक अपव्यय अनावश्यक भोजन भार वहन करने से होता है। शरीर रक्षा के लिए सरल और स्वल्प भोजन की आवश्यकता होती है, किंतु हम दुष्पाच्यरूप में अधिक मात्रा में उसे ग्रहण करते हैं। सोचते हैं कीमती, स्वादिष्ट और अधिक भोजन करने से बलिष्ठ बनेंगे, पर होता ठीक उलटा है। गरिष्ठ और प्रचुर भोजन जितनी शक्ति उत्पन्न करता है, उससे कहीं अधिक अपने पचाने में खर्च करा लेता है। अस्तु, हम प्रतिदिन घाटे में रहते हैं और अंततः दिवालिया बनकर असमय में ही जीवनलीला समाप्त कर देते हैं। इसके विपरीत जो लोग प्रयत्नपूर्वक प्राणशक्ति बढ़ाते हैं, वे न केवल मानव जीवन सार्थक करते हैं, अपितु भौतिक जीवन में भी ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

❑ ❑

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)